ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 11 जनवरी 2026 | **आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र** | सप्ताह रविवार, 11 जनवरी 2026 से 17 जनवरी 2026

माघ कृ. 08 ● वि० सं०-2082 ● वर्ष 67, अंक 02, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 201 ● सृष्टि-संवत् 1,96,08,53,126 ● पृ.सं. 1-12 ● मूल्य - 5/- रु. ● वार्षिक शु. 300/- रु.

पश्चिमी बंगाल में डी.ए.वी. संस्थाओं ने मनाया स्वामी श्रद्धानंद जी एवं पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल का बलिदान दिवस

पश्चिमी बंगाल में आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा के तत्त्वाधान में डी.ए.वी. विद्यालयों द्वारा अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानंद एवं पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल के बलिदान दिवस के उपलक्ष्य में पंचदिवसीय आयोजन किया गया।

आर्यसमाज डीएवी मॉडल स्कूल, दुर्गापुर में विशेष–यज्ञ का आयोजन किया गया। इस महायज्ञ में मुख्य यजमान स्वयं उपसभा प्रधान श्रीमती पापिया मुखर्जी रहीं। उन्होंने कहा कि स्वामी श्रद्धानंद जी का भारतीय संस्कृति को बढ़ावा देने एवं पंडित रामप्रसाद बिस्मिल का देश की क्रांति में बहुत बड़ा योगदान था।

विद्यार्थियों में त्याग एवं समर्पण की भावना जागृत हो इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए इस बार विद्यार्थियों

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

डी.ए.वी. कॉलेज जालंधर के प्राचार्य डॉ. राजेश हुए सेवानिवृत्त

डी.ए.वी. कॉलेज जालंधर में प्राचार्य डॉ. राजेश कुमार की सेवानिवृत्ति के उपलक्ष्य पर हवन यज्ञ का आयोजन किया गया।

वरिष्ठ उप प्राचार्य डॉ. कुँवर राजीव ने प्राचार्य महोदय को शुभकामनाएँ देते हुए उनके योगदान, मार्गदर्शन, कॉलेज के प्रति समर्पण के लिए धन्यवाद किया।

प्राचार्य डॉ. राजेश ने अपने उद्बोधन में भगवद्गीता में वर्णित कर्म के प्रकारों को बताया। उन्होंने कर्म, अकर्म, विकर्म के माध्यम से उदाहरण प्रस्तुत करते हुए निस्वार्थ भाव से निष्ठापूर्वक कर्म करते रहने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने हवन यज्ञ में उपस्थित टीचिंग, नॉन–टीचिंग सदस्यों और छात्रों का धन्यवाद किया।

प्राचार्य डॉ. राजेश कुमार के साथ गणित विभाग के अध्यक्ष डॉ. पूनम कुमार शर्मा भी इसी दिन सेवानिवृत्त हुए। डॉ. शर्मा ने यज्ञ में यजमान की भूमिका निभाई। प्राचार्य राजेश सहित उपस्थित प्राध्यपकों, छात्रों ने उन्हें शुभकामनाएँ दीं। हवन यज्ञ के पश्चात् सभी ने प्रसाद ग्रहण किया। इस अवसर पर वरिष्ठ उप प्राचार्य, उप प्राचार्या, रजिस्ट्रार, डिप्टी रजिस्ट्रार एवं विभिन्न विभागों के विभागाध्यक्ष, आर्य युवा समाज की संचालिका अन्य संकाय सदस्य तथा गैर–शैक्षणिक स्टाफ व विद्यार्थी उपस्थित रहे।

सैक्टर- 15-ए, चण्डीगढ़ में स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस का आयोजन

डी.ए.वी. मॉडल स्कूल सैक्टर–15–ए, चण्डीगढ़ में स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस पर "यज्ञ एवं श्रद्धांजलि समारोह" का आयोजन किया गया, जिसमें मुख्यातिथि विद्यालय के उपाध्यक्ष तथा आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा, चण्डीगढ़ के अध्यक्ष, प्रि. रमेश चन्द्र जीवन जी थे।

यज्ञ में विद्यार्थियों ने सस्वर वेदमंत्रों का पाठ किया। आचार्य रमेश शास्त्री ने संक्षिप्त रूप से स्वामी श्रद्धानन्द जी के बारे में बताया।

मुख्यातिथि प्रि. रमेश चन्द्र जीवन ने स्वामी श्रद्धानन्द जी के व्यक्तित्व से सभी को सुपरिचित करवाया और राष्ट्रहित में उनके सहयोग पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा–स्वामी श्रद्धानन्द जहाँ आर्यसमाज के एक सच्चे संन्यासी थे वहीं वे एक स्वतंत्रता सेनानी भी रहे। उन्होंने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को पुनः स्थापित किया, शुद्धि–आंदोलन चलाया तथा नारी शिक्षा पर भी ज़ोर दिया।

प्राचार्या, श्रीमती अनुजा शर्मा ने स्वामी श्रद्धानन्द जी को शत्–शत् नमन करते हुए विद्यालय परिवार को इस आयोजन के लिए धन्यवाद ज्ञापित किया।

शांति पाठ के साथ कार्यक्रम सफलता पूर्वक सुसम्पन किया गया।

जो सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है और ब्रह्मा से लेके सब ऋषि मुनियों का पूज्य था, है और होगा, इससे उस परमात्मा का नाम **'यज्ञ'** है। क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है। स. प्र. समु. १

{संपादक – पूनम सूरी}

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार, 11 जनवरी 2026 से 17 जनवरी 2026

मनोबल, सत्य, यश, श्री

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

मनसः काममाकूतिं, वाचः सत्यमशीय।
पशूनां रूपमन्नस्य रसो, यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा।।

यजु ३९.४

ऋषिः **ब्रह्मा**। देवता **अग्निः**। छन्दः **त्रिष्टुप्**।

● (**मनसः**) मन की (**कामं**) इच्छा–शक्ति को [तथा] (**आकूतिं**) संकल्प–शक्ति को [और] (**वाचः**) वाणी के (**सत्यं**) सत्य को (**अशीय**) प्राप्त करूं। (**पशूनां**) पशुओं का (**रूपं**) रूप, (**अन्नस्य**) अन्न का (**रसः**) रस, (**यशः**) कीर्ति [और] (**श्रीः**) श्री (**मयि**) मुझमें (**श्रयतां**) स्थित हो। (**स्वाहा**) एतदर्थ आहुति देता हूं, सत्क्रिया करता हूं।

मैं चाहता हूं कि मैं एक उत्कृष्ट मानव बनूं, मेरे अन्दर विविध शक्तियाँ अपने पूर्णरूप में निवास करें। मेरे मन के अन्दर प्रबल इच्छा शक्ति (काम) और संकल्प शक्ति (आकूति) हो। मानव इच्छाएं करता रहता है, परन्तु वे पूर्ण नहीं होतीं, यह इच्छा शक्ति की दुर्बलता का चिन्ह है। योगी जन बताते हैं कि इच्छा शक्ति को बलवान् बना लेने पर मनुष्य जो इच्छा करता है वह पूर्ण होकर रहती है। वह इच्छा करता है कि अमुक पापी धर्मात्मा बन जाए, या अमुक रोगी का रोग दूर हो जाए, तो सचमुच वैसा ही हो जाता है। मन की दूसरी शक्ति संकल्प शक्ति है। संकल्प की दृढ़ता होने पर मनुष्य अपने व्रत से च्युत नहीं होता। जो व्रत एक बार धारण कर लेता है, अन्त तक उसका निर्वाह करता है। यदि वह संकल्प करता है कि मैं आज से ब्रह्मचारी रहूंगा, तो उस पर दृढ़ रहता है। यदि वह संकल्प करता है कि मैं आज से धूम्रपान करना छोड़ता हूं, तो सचमुच उसका यह व्यसन छूट जाता है। इसके विपरीत जिनमें संकल्प शक्ति की दृढ़ता नहीं होती, वे नित्य नवीन–नवीन संकल्प करते हैं, और किसी न किसी बहाने उन्हें तोड़ते रहते हैं।

मेरी यह भी कामना है कि मेरी वाणी में सत्य हो। वाणी में सत्य तभी आ सकता है, यदि मन में भी सत्य हो। यदि मन में सत्य होगा, तो वह कर्म में भी आयेगा। इस प्रकार मनसा, वाचा, कर्मणा मैं सत्यमय हो जाऊं, यह मेरी आन्तरिक अभिलाषा है। पतंजलि मुनि ने कहा है कि जिसके अन्दर सत्य प्रतिष्ठित हो जाता है, उसे क्रिया–फलाश्रयत्व प्राप्त हो जाता है, उसकी वाणी अमोघ हो जाती है। उसकी वाणी से दिये गये आशीर्वाद सत्य सिद्ध होते हैं। मेरी वाणी में भी यह दिव्य शक्ति आये।

मेरी यह भी अभिलाषा है कि मुझे गाय आदि दुधारू पशुओं का दूध यथेच्छ मात्रा में मिले, जिससे उसके सेवन से प्राप्त होनेवाला सौन्दर्य मुझमें आये। मुझे सात्त्विक अन्नों से मिलनेवाला रस–रक्त भी प्राप्त हो। मुझे धर्म और सत्कर्म से प्राप्त होनेवाली कीर्ति भी मिले और मेरी श्री, मेरी शोभा, दिग्दिगन्त में फैले। उक्त सब कामनाओं और आदर्शों की पूर्ति के लिए 'स्वाहा' हो, सत्क्रियाओं और सत्यप्रयासों की निरन्तर आहुति पड़ती रहे। ❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

प्रभु–भक्ति

● **महात्मा आनन्द स्वामी**

पाठक वृन्द ! हम गत अनेक वर्षों से आनन्द कथा के माध्यम से स्वामी जी के विचारों से पाठकों को अवगत करा रहे हैं। स्वामी जी ने अनेक पुस्तकें लिखीं। हमारा प्रयास है कि स्वामी जी की किसी भी पुस्तक से पाठक वंचित न रह जाएँ। इस प्रवाह में हमने गत अंकों में 'त्यागमयी देवियाँ' गत अंक तक प्रस्तुत की। स्वामी जी की रचना 'प्रभु–भक्ति' का पूर्व प्रसारण आर्य जगत् के दस वर्ष पूर्व हो चुका है।

अब हम स्वामी जी की ईश्वर भक्ति पर आधारित इस पुस्तक 'प्रभु–भक्ति' का पुनः प्रसारण प्रारम्भ करने जा रहे हैं। स्वामी जी ने इस पुस्तक में परमपिता परमात्मा की भक्ति व उसकी विधि का बहुत ही सरल व प्रभावी भाषा शैली में वर्णन किया है। आशा है पाठक वृन्द इससे अवश्य लाभान्वित होंगे।

यह पुस्तक जब लिखी गई उस समय 'आर्य जगत्' के प्रसिद्ध संन्यासी महात्मा नारायण स्वामी जी ने इस पुस्तक पर मनन करके इसकी प्रस्तावना लिखी। हम पहले इसी प्रस्तावना को प्रस्तुत कर रहे हैं। महात्मा नारायण स्वामी जी लिखते है–"यदि हम दुनिया की हर्ष की मात्रा कम और शोक की मात्रा को बढ़ाकर दुनिया को छोड़ते है तो सभी स्वीकार करेंगे कि हमने धार्मिकता का जीवन व्यतीत नहीं किया।".....

सम्पादक

प्रस्तावना

एक विद्वान् का कहना है कि मनुष्य को अपना जीवन संसार में इस ढंग से व्यतीत करना चाहिए कि जब वह दुनिया को छोड़े तो दुनिया का जितना हर्ष–समुदाय है, जगत् के उल्लास का जितना जोड़ है, उसमें उसे कुछ वृद्धि करके जाना चाहिए। यदि हम वृद्धि करके जाते हैं तो समझ लो कि हमने धर्म का जीवन व्यतीत किया, परन्तु यदि हम दुनिया की हर्ष की मात्रा कम और शोक की मात्रा को बढ़ाकर दुनिया को छोड़ते हैं तो सभी स्वीकार करेंगे कि हमने धार्मिकता का जीवन व्यतीत नहीं किया। धार्मिक जीवन व्यतीत करने के लिए आवश्यक है कि उसकी तैयारी की जाए। कोई भी काम तैयारी किये बिना नहीं हुआ करता, इसलिए उसकी तैयारी करनी ही होगी। तैयारी का उपाय यह है कि मनुष्य की हैसियत से हमें सोचना चाहिए कि हमारे कर्त्तव्य क्या हैं ? यदि हम सोच–समझकर उन्हें पूरा करने का यत्न करेंगे, तो यह न केवल तैयारी होगी अपितु तैयारी के साथ 'हर्ष' की मात्रा में वृद्धि इस उद्देश्य की पूर्ति का क्रियात्मक साधन भी होगा।

मनुष्य के कर्त्तव्य–

मनुष्य के कर्त्तव्य– संक्षिप्त रीति से यदि कहा जाए तो तीन भागों में विभक्त हो सकते हैं। वे विभाग ये हैं :–

(1) मनुष्य को, अच्छा मनुष्य बनने के लिए, अपने सम्बन्ध में क्या करना चाहिए ?

(2) उसके दूसरे प्राणियों के प्रति क्या कर्त्तव्य हैं ?

(3) ईश्वर के सम्बन्ध में उसे क्या करना चाहिए ?

इन्हीं को दूसरे शब्दों में (1) शारीरिक, (2) सामाजिक, और (3) आत्मिक उन्नति कहते हैं। कर्त्तव्य के इन विभागों का कुछ विवरण देना उचित है ताकि सभी को उनका ज्ञान हो सके।

कर्त्तव्य का पहला भाग–

इस विभाग में, मनुष्य को अपने सम्बन्ध में क्या करना चाहिए, इस पर विचार करना होगा। उन्हीं का यहाँ सक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

पहला कर्त्तव्य–अपनी इन्द्रियों को बलवान् बनाना है। मनुष्य का बाह्य स्थूल शरीर सिर से लेकर पाँव तक इन्द्रियमय है। फलतः इन्द्रियों को बलवान् बनाने का अर्थ यह हुआ कि बाह्य शरीर को बलवान् बनाना। शारीरिक बल प्राप्त करने की प्रत्येक को इतनी चिन्ता रहती

थी कि चार आश्रमों में से पहले आश्रम में विद्याध्ययन के सिवाय ब्रह्मचर्य के द्वारा अपने को बलवान् बनाना मुख्य कर्त्तव्य था। इस देश की माताएँ, यदि उनसे निर्बल सन्तान पैदा हो जाए तो उसे अपने लिए घातक समझती थीं। महाभारत में एक जगह आया है कि सप्त ऋषि, जिनमें अरुन्धती नाम वाली एक ऋषिका भी थी, यात्रा कर रहे थे। एक सरोवर के कमल के डंठल तोड़कर उन्होंने एक जगह रखे परन्तु उन्हें वहाँ से कोई उठा ले गया। जब ले जाने– वाला कोई दिखाई नहीं दिया तो फिर एक–दूसरे पर सन्देह होने पर यह ठहरा कि प्रत्येक अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए कसम खाये। उस मौके पर अरुन्धती की कसम यह थी–**"अभोग्याऽवीर सूरस्तु बिसरस्तेये करोति या"** अर्थात् जो पाप माता को अनाचार करने और निर्बल सन्तान पैदा करने से लगता है, वही उसको लगे, जिसने डण्ठलों को चुराया हो। स्पष्ट है कि उस समय माताएँ निर्बल सन्तान पैदा करने को अनाचार और चोरी करने जैसा घातक समझती थीं। इस निर्बलता को घातक समझते हुए, शारीरिकोन्नति प्रत्येक को करनी चाहिए।

दूसरा कर्त्तव्य–अपने को पवित्र बनाना है। पवित्रता से बल का दुरुपयोग नहीं हुआ करता। इन्द्रिय और मन में पवित्रता का संचार होने से मनुष्य सदाचारी बना रहता है। पवित्रता के लिए मन का शुद्ध होना अनिवार्य है। मन शुद्ध अन्न के सेवन और सत्य के क्रियात्मक प्रयोग से शुद्ध हुआ करता है। छल और कपट से पैदा किया हुआ अन्न मन को दूषित कर दिया करता है। कहावत है– **'यथा अन्न तथा मन।'**

तीसरा कर्त्तव्य–अपने को अच्छा बनाने के लिए मनुष्य का तीसरा कर्त्तव्य यह है कि वह अपने अन्दर श्रद्धा के भाव पैदा करे। श्रद्धा, यास्काचार्य के निर्वचनानुसार, **'श्रत् सत्यं दधाति या सा श्रद्धा'** सच्चाई का धारण करना है। सच्चाई का ज्ञान और चीज़ है, सच्चाई का धारण करना दूसरी चीज़। सच्चाई का ज्ञान रखने से मनुष्य सच्चाई पर अमल करने के लिए बाधित नहीं होता; परन्तु सच्चाई के धारण कर लेने से, अर्थात् स्वाद चखने के सदृश उसके अनुभव कर लेने से, वह उस सच्चाई के विरुद्ध आचरण न कर सकने के लिए मजबूर हो जाता है।

कर्त्तव्य का दूसरा भाग–

मनुष्यों को दूसरे के प्रति क्या करना चाहिए, इस सम्बन्ध में उसके कर्त्तव्य इस प्रकार हैं :–

1. अपने हृदय में उसे किसी के लिए भी ईर्ष्या और द्वेष के भाव नहीं रखने चाहिएँ। इन भावों के रखने से किसी दूसरे को हानि हो या न हो, यह तो संदिग्ध है, किन्तु यह निश्चित है कि इनसे उसका निज का हृदय मलिन होकर किन्हीं अच्छी बातों के सोचने और विचारने के योग्य नहीं रहता।

2. मनुष्य नास्तिक हुए बिना किसी दूसरे को तकलीफ नहीं दे सकता। ईश्वर व्यापकत्त्व से सभी मनुष्यों के 'शरीरों में व्याप्त' रहता है। जब प्रत्येक प्राणी के शरीर में ईश्वर मौजूद है, तब उसका निरादर किये बिना कैसे उसके निवास–मन्दिर को कोई तोड़–फोड़ सकता है ? यही निरादर तो नास्तिकता है।

3. मनुष्य को दूसरों की भी उतनी ही चिन्ता करनी चाहिये जितनी कि वह अपनी करता है। उसे अच्छी तरह से यह बात समझ लेनी चाहिए कि उसकी उन्नति का रहस्य अन्यों की उन्नति में छिपा हुआ है।

कर्त्तव्य का तीसरा भाग–

ईश्वर–प्रेम और ईश्वर–विश्वास से मनुष्य अपनी आत्मा को बलवान् बना सकता है। ईश्वर को जानने के लिए अपने को पहले जान लेना आवश्यक है। क्यों ? इसलिए कि ईश्वर–ज्ञान–प्राप्ति इन्द्रियों के द्वारा नहीं हुआ करती। इन्द्रियों की प्रवृत्ति अपने बाह्य विषयों की ओर है और इसलिए वे अपने बाह्य विषयों के सिवा, अन्य कुछ नहीं देख सकते और इसलिए उन्हें बहिर्मुखी कहा जाता है। इसके विपरीत आत्मा, अन्तर्मुखी होने से अपने को भी देख सकता है और भीतर मौजूद परमात्मा को भी देख सकता है। यदि वह अपने को नहीं जान सकता, तो फिर परमात्मा को किस प्रकार देख सकता है ? इसलिए अपने को जान लेने की शिक्षा, विद्वान् जगत् के प्रारम्भ से अब तक बराबर देते चले आये हैं– 'Know thy-self' प्रसिद्ध कहावत है। स्पिनोता ने एक जगह लिखा है कि "जिस व्यक्ति को अपना और अपनी भावनाओं का ज्ञान है, उसके लिए, स्वीकार करना पड़ेगा कि वह परमात्मा से प्रेम करता है।" जब हम कहते हैं कि परमात्मा का ज्ञान हमें है तो इसका अभिप्राय केवल इतना होता है कि हम उसे जानते हैं जो हमारे कल्याण के लिए आवश्यक है। उसे ठीक–ठीक जान लेना मनुष्य की शक्ति से बाहर है। उर्दू के एक कवि ने लिखा है और बहुत अच्छा लिखा है :–

क्या तुरफ़ा है खूबी
मेरे महबूब की देखो।
दिल में तो वो आता है,
समझ में नहीं आता।।

हमें क्यों उसके जानने अथवा उसे प्रेम करने की ज़रुरत है ? इस प्रश्न के उत्तर के लिए निम्न पंक्तियाँ विचारणीय हैं–

संसार में शान्ति, मनुष्य के भातृ–भाव, बिला लिहाज़ रंग, नस्ल और देश समस्त देशवासियों को प्रेम के एक उत्कृष्ट सूत्र में बाँधे रहने का कारण और एकमात्र कारण वास्तविक आस्तिकता है। वेद में इस बात को असन्दिग्ध शब्दों में कहा गया है कि "इस पृथिवी पर बसने–वाले समस्त मनुष्यों का एक विशाल परिवार है, जिसमें न कोई छोटा है न कोई बड़ा, अपितु सब भाई हैं। उन सबका पिता ईश्वर और उन सबकी माता पृथिवी है।"

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते
सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां
सुदुधा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः।।

ऋग्वेद 5.60.5

वेद प्रतिपादित इस सार्वजनिक भ्रातृ–भाव का अनुभव, मनुष्य उसी समय कर सकता है, जब पहले ईश्वर के सार्वत्रिक पितृभाव का विश्वास उसे हो जाए। इसी विश्वास को पहले आ जाने की ज़रुरत है। ईश्वर के प्रेम का प्रारम्भ–रूप वह होता है, जब मनुष्य के हृदय में ईश्वर–विश्वास का सूत्रपात हुआ करता है। यह विश्वास बढ़ते–बढ़ते निश्चयात्मक ज्ञान का रूप धारण कर लेता है और तभी प्रेम का उत्कृष्ट रूप प्रादुर्भूत होता है। उससे प्रेमी प्रियतम के रूप में मग्न होकर अपनी सुध–बुध भुला देता है। यही प्रेम की उत्कृष्ट अवस्था भक्ति है। भक्ति की भावना में भक्त केवल स्वयं ही शांत और प्रसन्नवदन नहीं रहता, अपितु अपने सम्पर्क में आनेवाले प्राणिमात्र के आह्लाद का कारण बन जाता है। यह निश्चित है कि संसार के अधिकतर प्राणी ऐसे नहीं हो सकते, परन्तु यदि ध्येय सबका यही हो जाए तो जो कोई इस मार्ग में जितना भी चलेगा, वह उतने ही से, सुख और शान्ति के साम्राज्य की वृद्धि का एक दरजे तक अवश्य कारण बन जायेगा। इसलिए आस्तिक भावना आज भी पुराने ढाँचे की त्याज्य वस्तु नहीं, अपितु जीती–जागती, संसार के वर्तमान अशान्ति–रूपी रोग की एकमात्र चिकित्सा है। फलतः अशान्ति से पीड़ित संसार–पुरुष को, चाहे वे यूरोप में निवास करते हों या एशिया में, खुशी और नाखुशी से इसी चिकित्सा विधि का सेवन करना ही पड़ेगा। अस्तु, यह बात कही जा चुकी है कि इस चिकित्सा–विधि के सेवन रूप ईश्वर–विश्वास से मनुष्य का आत्मा बलवान् बना करता है। *क्रमशः*

संसार में शान्ति, मनुष्य के भातृ-भाव, बिला लिहाज़ रंग, नस्ल और देश समस्त देशवासियों को प्रेम के एक उत्कृष्ट सूत्र में बाँधे रहने का कारण और एकमात्र कारण वास्तविक आस्तिकता है। वेद में इस बात को असन्दिग्ध शब्दों में कहा गया है कि "इस पृथिवी पर बसने-वाले समस्त मनुष्यों का एक विशाल परिवार है, जिसमें न कोई छोटा है न कोई बड़ा, अपितु सब भाई हैं। उन सबका पिता ईश्वर और उन सबकी माता पृथिवी है।"

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवाऽअमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त।।

यजु. 32.10

तू हमारा बन्धु प्यारा, तू हमारा जन्मदाता
तू सहारा, तू अधारा, तू हमारा है विधाता।
विश्व में जो कुछ जहां है, ज्ञान उस सबका तुझे है
लक्ष्य तक वह ही पहुंचता राह तू जिसको दिखाता।

गतांक से आगे...

भारतीय नवजागरण और स्वामी दयानन्द सरस्वती

● डॉ. ज्वलन्तकुमार शास्त्री

4. पुराणों पर प्रबल प्रहार—स्वामीजी द्वारा पुराणों पर प्रबल प्रहार का प्रमुख कारण यह रहा है कि उन्होंने स्पष्टतः यह अनुभव कर लिया था कि वेद—उपनिषद्, योगदर्शन और वेदान्त सूत्रों में जो ईश्वर का स्वरूप वर्णित है, वह अज—अकाय—अजन्मा निराकार सर्वव्यापकत्व से अभिमण्डित है, वह ईश्वर साकार, अवतार और लीलाबिहारी नहीं है। पातंजल योग—दर्शन का अष्टाङ्ग मार्ग (यम—नियम—आसन—प्राणायाम—प्रत्याहार—धारणा—ध्यान और समाधि) ही उसकी उपासना की पद्धति है। सामान्य गृहस्थियों के लिए ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, भजन, पूजा, सन्ध्या, वन्दनादि के लिए भी ऋषियों ने ओंकार (प्रणव) और गायत्री मन्त्र के जप तथा सन्ध्या—वन्दन हेतु वैदिक ऋचाओं के उपयोगी मन्त्र विनियुक्त किये हैं। अतः स्वामी दयानन्द ने पंचमहायज्ञविधि और संस्कारविधि प्रभृति ग्रन्थों में परम्परा—प्राप्त ओंकार (प्रणव) और गायत्री मन्त्र का उच्चारण, जप तथा सन्ध्या की विधि लिखी है जिसमें पूर्वाचार्य वैदिकों के समान अंगस्पर्श, मार्जन, अघमर्षण, उपस्थानादि कर्मों का प्रयोग है। ईश्वर की मूर्ति या विग्रहवती देवताओं की अर्चना—पद्धति वैदिक और औपनिषदिक ही नहीं दर्शनकारों द्वारा भी अभिमत नहीं है।

(क) करणवच्चेन्न भोगादिभ्यः (ब्रह्मसूत्र—वेदान्त दर्शन—2/2/40)। अथ लोकदर्शनानुसारेणेश्वरस्यापि किञ्चित्करणानामायतनं शरीरं कामेन कल्प्येत, एवमपि नोपपद्यते। सशरीत्वे हि सति संसारिवद् भोगादिप्रसङ्गाद् ईश्वरस्यापि—अनीश्वरत्वं प्रसज्येत—शंकराचार्यः। अर्थात्—यदि लोक—दर्शन के अनुसार ईश्वर का भी इन्द्रियों का आश्रयवाला कोई शरीर हम अपनी इच्छा से कल्पना करें तो इस प्रकार की कल्पना भी उपपन्न नहीं हो सकती। क्योंकि सशरीर होने पर परमात्मा हम जैसे सांसारिक लोगों के सदृश भोग—विलास आदि में संलिप्त हो जाएगा, जो कि सम्भव नहीं है। अर्थात् इस प्रकार का ईश्वर तो हम लोगों के समान अनीश्वरत्व—दोष से प्रसक्त हो जाएगा।

(ख) अरूपवदेव हि तत्प्रधानत्ववात् (ब्रह्मसूत्र 3/2/14)। शांकरभाष्यम्— रूपाद्याकाररहितमेव ब्रह्मावधारयितव्यं न रूपादिमत्। कस्मात् ? तत्प्रधानत्वात्। तस्मादेवंजातीयकेषु वाक्येषु यथाश्रुतं निराकारमेव ब्रह्मावधारयितव्यम्।........ येनोभयीष्वपि श्रुतिषु सतीष्वनाकारमेव ब्रह्मावधार्यते, न पुनर्विपरीतमिति।। अर्थात्—रूपादि आकार से रहित निराकार ब्रह्म का ही अवधारण = निश्चय करना चाहिए। ऐसा क्यों? क्योंकि उसकी प्रधानता है। अर्थात्—साकार और निराकार दोनों प्रकार की श्रुतियों के विद्यमान होने पर भी निराकार ब्रह्म ही अवधारित निश्चित होता है इसके विपरीत साकार ईश्वर नहीं, क्योंकि निराकारपरक श्रुतियों की प्रधानता है।

(ग) न स्थानतोऽपि परस्योभयलिंगं सर्वत्र हि (ब्रह्मसूत्र 3/2/11)। शंकराचार्यभाष्यम्—न तावत् स्वत एव परस्य ब्रह्मण उभयलिङ्गत्वमुपपद्यते। न ह्येकं वस्तु स्वत एव रूपादिविशेषोपेतं तद्विपरीतं चेत्यवधारयितुं शक्यं, विरोधात्। अर्थात् परब्रह्म परमेश्वर साकार और निराकार दोनों रूपों (लिङ्गों) में नहीं हो सकता। क्योंकि दोनों स्वरूप एक दूसरे के विरोधी हैं। एक ही वस्तु रूपादि से युक्त और रूपादि से रहित नहीं हो सकती।

> **स्वामी दयानन्द ने पंचमहायज्ञविधि और संस्कारविधि प्रभृति ग्रन्थों में परम्परा-प्राप्त ओंकार (प्रणव) और गायत्री मन्त्र का उच्चारण, जप तथा सन्ध्या की विधि लिखी है जिसमें पूर्वाचार्य वैदिकों के समान अंगस्पर्श, मार्जन, अघमर्षण, उपस्थानादि कर्मों का प्रयोग है। ईश्वर की मूर्ति या विग्रहवती देवताओं की अर्चना-पद्धति वैदिक और औपनिषदिक ही नहीं दर्शनकारों द्वारा भी अभिमत नहीं है।**

स्वामी जी के इस निष्कर्ष की पुष्टि हिन्दी के प्रसिद्ध समालोचक डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के इस कथन से भी होती है

"वाममार्ग के बढ़ते हुए प्रभाव को परवर्ती पुराणों में प्रकारान्तर से स्वीकार कर लिया गया है। विशेषरूप से श्रीमद्भागवत, ब्रह्मवैवर्त पुराण आदि में कृष्ण के साथ गोपी रतिविहार का समूचा 'पैटर्न' तान्त्रिक है। वाममार्ग का मर्म रागसाधना है, अर्थात् राग के माध्यम से परमतत्त्व की प्राप्ति होनी चाहिए जबकि षड्दर्शनों में सर्वत्र रागदमन का उपदेश दिया गया है। वाममार्गी योग पतंजलि के योगशास्त्र से भिन्न है।" **{विश्वमरनाथ उपाध्याय, मध्यकालीन हिन्दी काव्य की तान्त्रिक पृष्ठभूमि, पृ० 28}**

यही कारण है कि स्वामी दयानन्द की पुस्तक भागवतखण्डन, शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण, वेदविरुद्ध मतखण्डन (वल्लभाचार्यमत—खण्डन) तथा सत्यार्थप्रकाश में भी पौराणिक धर्म, उसकी कथित साकारोपासना और राधा—कृष्ण की शृंगारपरक भक्ति का जोरदार खण्डन मिलता है। इसके अतिरिक्त ऋषि दयानन्द को अपने मथुरा प्रवास के काल में वैष्णव सम्प्रदाय के आचार—विचार, व्यवहार, सिद्धान्त और रीति—नीति को निकट से देखने का अवसर मिला, इस कारण भी इनकी भक्ति के नाम पर अन्दर की लीला के स्वामीजी विरोधी हो गए। डॉ. जॉर्डन्स के इस निष्कर्ष से भी असहमत होने का कोई प्रश्न नहीं है। **{भवानीलाल भारतीय, स्वामी दयानन्द पश्चिम की दृष्टि में, पृष्ठ 196}** स्वामी जी के ग्रन्थों में वाममार्गी या तन्त्रमार्ग—सम्मत अनैतिक और अश्लील धार्मिक क्रिया—कलापों को किंचित् स्वीकृति भी नहीं मिली। अपितु पूरे प्रबल वेग से स्वामी जी ने खण्डन के खड्ग से उसे निर्मूल करने में पूरी शक्ति लगाई। तंत्र—साहित्य में गुह्यसाधना का जो वर्णन था, वह तंत्र—साहित्य वाममार्ग तक ही सीमित नहीं रहा अपितु बौद्धों के महायान से होते हुए हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल के रसिक सम्प्रदाय में ही नहीं, अपितु सगुण मार्ग के कृष्णाश्रयी शाखा के भक्त कवियों में राधा और कृष्ण के नाम पर अतिशृंगारपरक रचनाओं में भी दिखाई पड़ता है। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने राधा—कृष्ण की शृंगारपरक रचनाओं की अनुकृति में राम—काव्य में भी ऐसी प्रवृत्ति पर अपनी चिन्ता प्रकट की और इसे सर्वथा हेय घोषित किया है।

5. 1857 ई. के स्वाधीनता युद्ध का समर्थन—स्वामी दयानन्द के जीवन काल की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक घटना सन् 1857 ई. का स्वाधीनता युद्ध है। अंग्रेज़ों के आतंक के कारण तत्कालीन अधिकांश नेता इस युद्ध के सम्बन्ध में मौन हैं। इस युद्ध के सम्बन्ध में लिखने वाले इने—गिने लोगों ने इसके प्रति अनुदार उद्गार ही व्यक्त किये हैं। अंग्रेज़ों के आतंक की जिन **भय सिर न हिलाइ सकत कहुँ भारतवासी"** **{लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, उन्नीसवीं शताब्दी, पृ0 51}** इन शब्दों में व्यक्त करने वाले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सन् 1857 ई० में स्वाधीनता युद्ध की "योद्धाओं की मूढ़ें" **{वही, साहित्य चिन्तन, पृ० 139}** कहकर निन्दा की है तथा विद्रोह को दबाकर अंग्रेज़ों के भारत साम्राज्य को अव्याहत बनाये रखने वाले लॉरेंस की प्रशंसा की है। **{ब्रजरत्नदास, भारतेन्दु ग्रन्थावली (तीसरा भाग) पृ० 102}** श्री प्रतापनारायण मिश्र ने सन् सत्तावन के योद्धाओं के सम्बन्ध में लिखा है कि—"थोड़े से अदूरदर्शी (लोगों के) कारण हमारे भारतीय नेशनमात्र को कलंक लगाना बुद्धिमत्ता से दूर है।" **{विजयशंकर मल्ल, प्रतापनारायण ग्रन्थावली, पृ0 214}** इस युद्ध के समय अंग्रेज़ों के बलात्कारों के कारण उत्पन्न गोरी संतति के सम्बन्ध में उन्होंने बड़ा हास्यापद मत दिया है। उन्होंने लिखा है कि—"उपद्रव के इधर—उधर गोरे लोगों का भय और प्रीति बहुतों के हृदय में.... खचित हो रही थी..... जिस माता के चित्त में जिस दशा वाले इंग्लिस्तानी का रूप..... बस गया था वैसे ही रंग की संतति उत्पन्न हो गई।" **{वही, पृ. 541}** जबकि स्वामी दयानन्द ने मूर्तिपूजा—खण्डन के प्रसंग में स्वाधीनतायुद्ध का समर्थन किया है। **{"जब संवत् 1914 (1857) के वर्ष में तोपों के मारे मन्दिर—मूर्तियाँ अङ्गरेजों ने उड़ा दी थीं, तब मूर्ति कहाँ गई थी? प्रत्युत बाघेर लोगों ने जितनी वीरता की और लड़े, शत्रुओं को मारा, परन्तु मूर्ति एक मक्खी की टाँग भी न तोड़ सकी। जो श्रीकृष्ण के सदृश कोई होता तो इनके धुर्रे उड़ा देता और ये भागते फिरते। भला, यह तो कहो कि जिसका रक्षक मार खाय, उसके शरणागत क्यों न पीटे जायें?" सत्यार्थ प्रकाश, एकादश समुल्लास, पृ० 295—96, (प्रकाशक— परोपकारिणी सभा, दयानन्द आश्रम, केसरगंज, अजमेर, 41वाँ संस्करण (पुनर्मुद्रण) 2019 ई.}**

क्रमशः

अध्यापक आवास, स्टेशन रोड, अमेठी, (उत्तर प्रदेश)—227405
मो. 7303474301

अज्ञात गोत्रोत्पन्न सत्यकाम जाबाल

● डॉ भवानीलाल भारतीय

पुराकाल में जबाला नामक एक स्त्री का पुत्र सत्यकाम था। जब वह थोड़ा बड़ा हुआ तो उसने अपनी माता से पूछा – "माँ, बताओ मेरा गोत्र क्या है ? मेरे पूर्वज पिता किस ऋषि की सन्तान थे, क्योंकि ऋषियों के नाम पर ही गोत्र चले हैं। मुझे ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश कर विद्याध्ययनार्थ गुरु–चरणों में उपस्थित होना है। वहाँ गुरु के समक्ष उपस्थित होकर मुझे स्वगोत्र के नाम–सहित स्वयं का परिचय देना होगा, अतः मुझे मेरे गोत्र का नाम बताओ।" जबाला का उत्तर था, "प्रिय पुत्र, मैं तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थ हूँ। कारण यह है कि मैंने अपनी युवावस्था तो अनेक पुरुषों की परिचारिका, सेविका के रूप में व्यतीत की है। मैंने शुद्ध दाम्पत्य जीवन को तो जाना ही नहीं। उसी यौवनकाल में मैंने तुम्हें पाया, अतः तुम्हारा गोत्र क्या है, यह कैसे बताऊँ ! बस यही समझ ले कि मेरा नाम जबाला है और तू सत्यकाम है, अतः यदि गुरु पूछें तो अपने मातृनाम को जोड़कर तू अपना नाम 'सत्यकाम जाबाल' बताना।"

अब सत्यकाम तत्त्व–जिज्ञासा के लिए हारिद्रुमत् के पुत्र गौतम के निकट गया जो अपने युग का प्रख्यात विद्वान् तथा तत्त्ववेत्ता था। उसने गुरु के निकट जाकर अपना अभिप्राय बताया और कहा – "भगवन्, ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करता हुआ मैं आपके समीप रहूँगा।" गौतम के पूछने पर सत्यकाम ने अपनी माता द्वारा निर्दिष्ट उत्तर देते हुए कहा – "भगवन्, मैं अपने गोत्र को तो नहीं जानता क्योंकि जब मैंने अपनी माता से यही बात पूछी तो उसने कहा कि मैंने अनेक स्थानों पर परिचर्या करते हुए यौवनावस्था में तुझे प्राप्त किया है, अतः तेरे पिता या उसके गोत्र को बताना तो कठिन है। तू तो इतना ही समझ कि जबाला का पुत्र तू सत्यकाम जाबाल है।"

आचार्य गौतम इस ब्रह्मचारी के सत्यकथन को जान गए। उन्होंने सोचा कि जो व्यक्ति अपनी माता के कुत्सित आचरण को भी बिना किसी संकोच के यथावत् कह दे, उसके सत्यकथन की प्रशंसा ही करनी चाहिए। ब्राह्मण का सर्वोपरि गुण उसकी सत्यनिष्ठा ही होती है। अतः सत्यकाम को जन्म देने वाला व्यक्ति चाहे अज्ञात–कुलोत्पन्न ही क्यों न हो, इस ब्रह्मचारी की प्रगाढ़ सत्यनिष्ठा ही उसको ब्राह्मण बना देती है। अतः उसने सत्यकाम का वर्ण ब्राह्मण निर्धारित किया और समिधाएँ मँगवाकर अग्निहोत्रपूर्वक उसका यज्ञोपवीत किया। जब ब्रह्मचारी सत्यकाम का उपनयन संस्कार सम्पन्न हो गया तो आचार्य ने उसे आश्रम की गौवों की सेवा का काम सौंपा। कृश और दुर्बल गायों की सेवा उसे देकर कहा कि तू इन्हें चराने के लिए जंगल में ले जा। सत्यकाम ने गुरु की आज्ञा को स्वीकार करते हुए कहा, "महाराज, आप निश्चिन्त रहें, जब ये गौवें स्वस्थ एवं सबल बन जाएँगी और एक हज़ार तक इनकी संख्या हो जाएगी, तभी मैं इन्हें लेकर आपकी सेवा में लौटूँगा।" इस अवधि में वह वनों में रहा और गौवों की सन्तति–वृद्धि की प्रतीक्षा करता रहा।

यह तो कथा का आमुख है। वस्तुतः उपनिषदों की कथाओं में ऐतिहासिकता तथा कल्पना मिश्रित है। पुराकालीन ब्रह्मवेत्ता राजर्षियों तथा तत्त्वज्ञ ब्राह्मण आचार्यों के कथानक लेकर इन उपाख्यानों की रचना हुई है। बीच–बीच में ब्रह्म के तात्त्विक निरूपण के लिए अनेक प्रकार के काल्पनिक तथा रूपक–प्रधान पात्रों को भी इन कथाओं में समाविष्ट किया गया है। वस्तुतः यह वेदों और उपनिषदों की एक शैली है। यहाँ जड़ पदार्थों और पशु–पक्षियों को भी बोलते हुए चित्रित किया गया है, किन्तु यह सब विषय को सहज और बोधगम्य बनाने के लिए ही हुआ है। जिस प्रकार हितोपदेश और पंचतंत्र की कहानियों में पशु–पक्षी भी मनुष्य की भाँति बोलते हैं तथा हर्ष, शोक, पीड़ा, विषाद, प्रफुल्लता आदि मनोभावों को व्यक्त करते हैं, उसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिए।

यही शैली प्रस्तुत कथा में अपनाई गई है। जब गुरु– प्रदत्त गायें बढ़कर एक हजार हो गईं तो उस गोसंघ में विद्यमान एक वृषभ सत्यकाम से बोला, "हम संख्या में एक सहस्र हो गए हैं, हमें अब आचार्यकुल में ले चलो।" पुनः उसने कहा, "मैं तुम्हें ब्रह्म के एक पाद का स्वरूप बतलाता हूँ।" जब सत्यकाम ने उसे जानने की इच्छा प्रकट की तो वृषभ ने कहा–"देखो, पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण–चारों दिशाएँ उस परब्रह्म की चार कलाएँ हैं और इन चतुष्कलाओं को धारण करनेवाला वह परमात्मा प्रकाशवान् है। इन दिशाओं के विस्तार और इनमें होनेवाले प्रकाश से परमात्मा की असीम व्याप्ति तथा उसके दिव्य प्रकाश का अनुमान करना चाहिए।" इसे उपनिषत्कार ने परमात्मा की प्रकाशोपासना कहा है। साधक को जानना चाहिए कि चारों दिशाएँ तथा उनमें होनेवाला प्रकाश ईश्वर की ही विभूति है। इस प्रकार ईश्वर को प्रकाशवान् जाननेवाला साधक भी लोक में दिव्यता धारण कर ज्ञानरूपी प्रकाशवाला हो जाता है। वह दिव्य लोकों पर विजय प्राप्त करता है और परमात्मा को प्रकाशमय जानकर स्वयं भी अपने जीवन को दिव्य बना लेता है।

सत्यकाम जाबाल का यह कथानक वस्तुतः परमात्मा की दिव्य विभूतियों का ही आख्यान करता है। जिस प्रकार गीता के विभूतियोग प्रकरण में परमात्मा की दिव्य विभूतियों का विस्तार निखिल ब्रह्माण्ड में प्रदर्शित किया गया, उसी प्रकार इस उपाख्यान में भी संसार के भौतिक परिदृश्य के संचालन के पीछे उस दिव्य सत्ता की उपस्थिति भिन्न–भिन्न प्रकार से दर्शाई गई है। ब्रह्माण्ड की इन सभी विभूतियों और कलाओं के पीछे परमात्मा की सत्ता को बताना ही इस उपाख्यान का प्रयोजन है।

उस वृषभ ने पुनः कहा, "इससे आगे की बात तुम्हें अग्नि बताएगा।"

सत्यकाम उन हज़ार गौवों को लेकर आश्रम की ओर चल पड़ा। जब चलते–चलते सायंकाल हुआ तो उसने आग जलाई, जिससे सर्वत्र प्रकाश हो गया। उसने गौवों को एक स्थान पर एकत्र किया, पुनः अग्नि में समिधाओं का आधान कर सायंकालीन अग्निहोत्र का कृत्य पूरा किया। अब वह मानो अग्नि से ही उपदेश पाने के लिए उसके समक्ष पूर्वाभिमुख होकर बैठ गया। अग्नि ने सत्यकाम को सम्बोधित कर कहा, "सुनो, मैं तुम्हें ब्रह्म के एक अन्य पाद का कथन करता हूँ। देखो, यह पृथिवी ब्रह्म की एक कला है। इसी प्रकार अन्तरिक्ष, प्रकाशमान द्यौलोक और विस्तीर्ण सागर उसकी अन्य कलाएँ हैं। इन चतुष्कलाओं से युक्त ब्रह्म के इस पाद को भी तुम्हें जानना चाहिए। द्यौ, अन्तरिक्ष और ससागरा धरती अनन्त ब्रह्माण्ड में एक बिन्दु–स्थानीय हैं किन्तु इन चारों को जानकर उनके आश्रयभूत असीमित–अनन्त ब्रह्माण्ड का हम विचार करते हैं और इस ब्रह्माण्ड का विचार ही हमें उसके निर्माता ब्रह्म तक पहुँचाता है। अनन्त ब्रह्माण्ड का रचयिता और नियामक परमात्मा भी अनन्त है और उसे ऐसा जानना ही अनन्तोपासना है।" इस उपासना के फल का निर्देश करते हुए भगवान् हुताशन ने कहा–"जो ब्रह्म को आदि–अन्तहीन–अनादि और अनन्त जानता है तथा उसकी इस रूप में उपासना करता है, वह स्वयं भी अविनाशी और अनन्त हो जाता है। अब वह मैं और मेरा की सीमा से हटकर **'सर्वं खलु इदं ब्रह्म'** का अनुभव करता है और स्व और पर को त्यागकर अपनी आत्मानुभूति को अनन्त विस्तारवाली बना लेता है।"

अग्नि ने सत्यकाम को पुनः कहा कि अगला उपदेश तुम्हें हंस से मिलेगा। हंस ने उसे बताया, "परमात्मा की एक कला अग्नि है, दूसरी सूर्य, तीसरी चंद्र और चौथी बिजली।" अभिप्राय स्पष्ट है। संसार के सूर्य, चन्द्रमा, विद्युत् आदि ज्योतिष्मान् पदार्थ परमात्मा की ही कृतियाँ = कलाएँ हैं। तभी तो कठोपनिषद् में कहा गया है–

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं, तस्य
भासा सर्वमिदं विभाति।। 2.5.15

उस परमात्मा के दिव्य प्रकाश को प्राप्त करके ही सूर्य, चन्द्र, विद्युत् और अग्नि अपना प्रकाश फैलाते हैं, अन्यथा इनमें स्वयं का प्रकाश कहाँ ? इन ज्योतिष्मान् पदार्थों को ज्योति देनेवाला परमात्मा ज्योतिष्मान् नाम से प्रसिद्ध है। यदि उपासक भी उस दिव्य ईश्वरीय शक्ति को **'ज्योतिषां ज्योतिः'** के रूप में जाने तो वह भी लोक में ज्योतियुक्त होकर समस्त लोकों पर विजय प्राप्त करता है। अपने दिव्य ज्ञान के बल पर लोकविजयी हो जाता है।

इस प्रकार उपदेश देकर हंस ने सत्यकाम से कहा कि इससे आगे का चतुर्थ पाद तुम्हें मद्गु नामक एक जलचर पक्षी बताएगा। अगले दिन सायंकाल सत्यकाम की भेंट उस जलचर मद्गु से हुई जिसने उसे बताया कि प्राण ही परमात्मा की एक कला है; नेत्र, श्रोत्र और मन उसकी अन्य कलाएँ हैं। इस प्रकार प्राणियों के शरीर के आधारभूत प्राण, नेत्र, श्रोत्र आदि ज्ञानेन्द्रियाँ और इन इन्द्रियों को अपने–अपने विषयों में प्रवृत्त करनेवाला मन–सभी परमात्मा से ही अपनी शक्ति प्राप्त करते हैं। शरीर को इस प्रकार आयतन प्रदान करनेवाला वह परमात्मा

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

सच्ची आस्तिकता

समस्त नैतिकताओं का आदिस्रोत-ईश्वर

● स्वामी (डॉ.) सत्यप्रकाश सरस्वती

{केन्या में दिया गया स्वामी जी का व्याख्यान}

आर्यसमाज के आस्तिकता सम्बन्धी विचार वे ही हैं, जो वेद–प्रतिपादित और ऋषि– प्रणीत शास्त्रों द्वारा अनुमोदित हैं। आस्तिकता का अभिप्राय यह है : –

(1) जगन्नियन्ता के अस्तित्व और उसके एकत्व में आस्था रखना, **पतिरेक आसीत्,** वही अकेला हमारा स्वामी है, **एकस्मै देवाय हविषा विधेम** (एकमात्र उसके प्रति हमारी श्रद्धा और निष्ठा)। उसी के प्रति **नम उक्तिं विधेम,** एकमात्र उसी के प्रति भूयिष्ठ श्रद्धा और हविष्।

(2) वह प्रभु एक है, नाम उसके अनेक हैं, जो उसके गुण, कर्म और स्वभाव के द्योतक हैं। लोक में वे नाम जड़–पिण्डों और शरीरधारियों के भी हो सकते हैं, पर उनकी परम सार्थकता परमात्मा के ही सन्दर्भ में हैं।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुः तदु चन्द्रमा।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म, ता आपः स प्रजापतिः।

वह एक है,विद्वान् उसे अनेक नामों से सम्बोधित करते हैं– **एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।**

(3) श्रुति में इसी प्रभु की अनेक ऋचाओं में विस्तृत व्याख्या है–वह शुक्र है, अकाय (शरीर–रहित) है, शुद्ध है, अस्नाविर है, अव्रण है, अपापविद्ध, वही कवि, मनीषी, परिभू और स्वयंभू है **(स पर्यगात्)।**

(4) हम सब उसकी शाश्वत प्रजा हैं और उस प्रजापति ने हमारे हित की दृष्टि से सृष्टि के समस्त पदार्थ विरचे हैं तथा हमारे कल्याण के लिए उसने वेद का ज्ञान भी दिया है –

शाश्वतीभ्यः समाभ्यः अर्थान् व्यदधात्। परमात्मा की सत्ता में तो विश्वास हो, किन्तु उसकी सृष्टि के प्रति आस्तिक भावना न हो तो ऐसी आस्तिकता, नास्तिकता के तुल्य ही मानी जाएगी। सृष्टि के प्रति आस्तिक भावना का अभिप्राय यह है कि सृष्टि में क्रम, नियमानुकूलता और प्रयोजन है, न तो सृष्टि असम्बद्ध है, न प्रयोजनहीन। सृष्टि की परिवर्तनशीलता प्रभु के अनुशासन में है, अतः यह जगत्यांजगत् **ईशावास्य** है **(ईशावास्यमिदं सर्वम्)।** इस जगत् में प्रभु की परमोत्कृष्ट कला अभिव्यक्त है। कला प्रभु की है, चित्रपट शाश्वत प्रकृति का उपादानत्व है और इसका प्रयोजन शाश्वत रहने वाले तुच्छ जीवों के निमित्त है, जिसको लोग कभी–कभी भूल से व्यवहार–जगत् कहते हैं। यह यथार्थ है और परमार्थ सिद्धि के निमित्त है। **सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात्, स विद्यात् ब्राह्मणं महत्।** यह जगत् न मिथ्या है, न स्वप्न, इसकी सप्रयोजन यथार्थता है और स्वतः ब्रह्म ही इस जगत् का निमित्त कारण है, **'जन्माद्यस्य यतः'** – (ब्रह्मसूत्र 1:1:2), उसी की सर्वज्ञता और सर्वव्यापकता से जगत् का उद्‌भव हुआ है।

(5) वह आस्तिकता अधूरी है, जिसमें प्रभु को ज्ञान का आदि स्रोत न माना जाये। प्रभु के संदर्भ से ही वेदान्त के प्राचार्य ने **"शास्त्रयोनित्वात्"** (ब्रह्मसूत्र 1।1।3) सूत्र द्वारा ब्रह्म को वेद या श्रुति का मूल स्रोत प्रतिपादित किया। **तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे** आदि श्रुति वाक्य हमें इस ओर ही प्रेरणा देते हैं, प्रभु ने अपनी सृष्टि के पशु, पतंग, पक्षी, कीटादिकों को नैसर्गिक ज्ञान दिया, और मनुष्य को इन सबमें श्रेष्ठ मानकर इसे श्रुति के ज्ञान से सम्पन्न किया। उसे विपुल स्वतन्त्रता दी कि वह श्रुति के आधार पर शास्त्रों का विकास करे और इस विकास द्वारा अभ्युदय और निःश्रेयस (वैशेषिक दर्शन) दोनों की उपलब्धियाँ करे।

(6) परमात्मा जिस प्रकार सृष्टि और श्रुति का निमित्त–कारण है और वह जिस प्रकार जगत् और ज्ञान का मूल बिन्दु है, उसी प्रकार परमात्मा स्वयं भद्र, सत्याचरण, सत्य–व्यवहार और मानवोचित समस्त नैतिकताओं का भी आदि–स्रोत है। दूसरे शब्दों में जहाँ प्रभु सत्यस्वरूप पुण्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप आनन्दस्वरूप है, वह धर्मस्वरूप है, उसी को हम सम्बोधित करके कहते हैं– **तेजोऽसि, बलमसि, वीर्यमसि, ओजोऽसि, मन्युरसि, सहोऽसि, इत्यादि।**

(7) प्रभु ही समस्त व्यवस्थाओं का स्वामी है और हमारे शुभाशुभ कर्मों से परिचित है। वही अकेला यह जानता है कि हमारे द्वारा किये गये कर्म पुण्य हैं या पाप और वही हमारे भविष्य के लिए कल्याण मार्ग पर हमें ले जाने में समर्थ है **(अग्ने नय सुपथा राये)** प्रभु को छोड़कर अन्य कोई न सर्वज्ञ है, न सर्व–व्यापक और न सर्वशक्तिमान्। अतः कोई चाहे पैगम्बर हो, पीर हो, महात्मा हो, भगवान, ऋषि, योगी या अवतारी पुरुष हो, हमारे प्रारब्ध की व्यवस्था में हस्तक्षेप करने वाला नहीं हो सकता। प्रभु की व्यवस्था न्याय पर आश्रित है, उसका न्याय ही दया है, जिसमें किसी के साथ पक्षपात नहीं। दण्ड और पुरस्कार का नाम ही दुःख और सुख की अनुभूतियाँ हैं। दण्ड के परिणामस्वरूप मनुष्य की निवृत्ति दुरितों (दुश्चरित्रों) से होती है और पुरस्कार के परिणामस्वरूप मनुष्य की प्रवृत्ति भद्र कृत्यों की ओर प्रोत्साहित होती है। परमात्मा की व्यवस्था से हमें इस प्रकार सुख और दुःख दोनों की अपने कल्याण के लिए प्राप्ति होती है। जो ईश्वर की इस व्यवस्था में आस्था नहीं रखता,वह आस्तिक कहलाने का अधिकारी नहीं है। यह व्यवस्था प्रभु के हाथ में है और इस व्यवस्था के संचालन में प्रभु को किसी के सहयोग की आवश्यकता नहीं है।

(8) वैदिक दर्शन के अनुसार जिसको हम ईश्वर कहते हैं, वह ब्रह्म से भिन्न अन्य कोई सत्ता नहीं है। वेद में ब्रह्म, इन्द्र, प्रजापति, अग्नि, आत्मन्, ईश्वर आदि पर्यायवाची एक ही प्रभु के गुणादि के कारण अनेक नाम हैं। माया की उपाधि से वशीभूत निर्गुण, अकर्ता ब्रह्म ईश्वर संज्ञा वाला बनकर सृष्टि का रचयिता और व्यवस्थाकर्ता बनता है, इस प्रकार की परिभाषा वैदिक ऋचाओं और उपनिषद् वाक्यों एवं वेदान्त–सूत्रों के द्वारा प्रतिपादित नहीं होती, ऐसी आर्यसमाज की मान्यता है। इस दृष्टि से आर्यसमाज द्वारा स्वीकृत तत्त्वज्ञान नवीन वेदान्तियों की धारणाओं से भिन्न है। इसी प्रकार आर्यसमाज यह स्वीकार नहीं करता कि ईश्वर ही अविद्या से ग्रसित होकर जीव की संज्ञा धारण करता है। इस प्रकार निम्न दो समीकरण जो नवीन वेदान्तियों को मान्य हैं वैदिक तत्वज्ञान से सुस्पष्ट नहीं होते –

(क) ब्रह्म+माया = ईश्वर

(ख) ईश्वर+अविद्या = जीव

आर्यसमाज द्वारा मान्य तत्त्वज्ञान, जिसकी पुष्टि न्याय–वैशेषिक आदि षड्दर्शनों से होती है, तीन अनादि, अनन्त सत्ताओं में विश्वास रखता है–

(1) ईश्वर जो सर्वव्यापक है और सृष्टि का निमित्त कारण है।

(2) प्रकृति, जो सत्व, रजस् और तमस् की साम्यावस्था में अव्यक्त है। सृष्टि–रचनाओं में उपादान–कारण है, इसके उपादानत्व पर प्रभु की कला प्रस्फुटित होती है।

(3) अणु–परिमाण से भी सूक्ष्म अनन्त संख्या वाले जीव, जिनके लिए समस्त सृष्टि की रचना है और जो पंचकोशों से युक्त शरीर–तन्त्र के माध्यम से जन्म और मृत्यु के चक्र में आते–जाते हैं और इन जीवनों द्वारा कर्तृत्व और भोक्तृत्व की सार्थकता उपलब्ध करते हैं। ये अविद्या के विनाश और सम्यक् ज्ञान की उपलब्धि करके मुक्ति या अमरत्व को प्राप्त करते हैं और तब पंचकोशों के पाशों से मुक्त होकर अपनी दिव्य शक्ति से प्रभु का सामीप्य और आनन्द प्राप्त करते हैं। इस अर्जित मुक्ति का प्रारम्भ होता है, तो इसका फिर अन्त भी होता है और यह मुक्ति सीमित कर्मों का फल होने से असीम भी नहीं हो सकती और इसलिए सर्ग के आरम्भ में विशेषतया और सर्ग के मध्य काल में भी विशेष रूप से मुक्तात्मायें फिर से जीवन और मृत्यु के चक्र में आती हैं।

स्वामी दयानन्द ने आर्यसमाज के जो दस नियम संगठन के व्यवहार के लिए निर्धारित किये, उसमें आस्तिकता सम्बन्धी निम्न नियम हैं : –

(1) सब सत्य–विद्या और जो पदार्थ–विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

(2) ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर–अमर, अभय, नित्य पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करना योग्य है।

आत्मा अणु है, परमात्मा विभु है अर्थात् हमारे शरीर के भीतर–बाहर सभी जगह विद्यमान् है। जीवात्मा का स्थान मस्तिष्क के उस केन्द्र–बिन्दु पर है, जहाँ पर समस्त ज्ञानेन्द्रियों द्वारा भेजी गयी संवेदनायें संकलित और समाहृत होती हैं और जहाँ से आत्मा द्वारा भेजी गयी समस्त प्रेरणायें कर्मेन्द्रियों को मिलती हैं। यह बिन्दु उपनिषद् के शब्दों में **विदृति** में है, मस्तिष्क में स्थित इस स्थान का नाम

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

महात्मा हंसराज जी सच्चे हंस थे

● भद्रसेन

आर्य जगत् के पाठक अच्छी प्रकार से जानते हैं कि होशियारपुर के समीपवर्ती ग्राम बजवाड़ा में श्री चुन्नी लाल जी के परिवार में 19 अप्रैल 1864 को एक बालक का जन्म हुआ। यह परिवार आर्थिक दृष्टि से बहुत अधिक अति साधारण था। इस बालक का नाम परिवार ने बड़ी आशाओं के साथ हंसराज रखा। पिता जी अधिक समय तक जीवित न रहे। माता जी ने तब दूसरों के घरों में कार्य करके जैसे–तैसे बालक का पालन और पढ़ाने का निर्वाह किया। हंसराज मैट्रिक करके आगे पढ़ने के लिए अपने बड़े भाई मुलखराज के पास लाहौर चले गए। श्री मुलख राज जी ने न केवल बी. ए. करने में हर प्रकार का सहयोग दिया अपितु इससे बढ़कर महर्षि दयानन्द जी सरस्वती की याद में बनने वाले 'दयानन्द ऐंग्लो वैदिक स्कूल' कॉलेज में प्रधान अध्यापक तथा प्राचार्य पद का उत्तर दायित्व बिना वेतन लिये करने का आश्वासन दिया। इतिहास इस बात का साक्षी है, कि इस प्रतिज्ञा को पूर्ण करके शिक्षा संगठन का सारा भार पूर्ण निष्ठा से निभा कर दिखाया। यदि किसी भी व्यक्ति ने या संगठन ने कभी कोई भी उपहार दिया, तो प्रिंसिपल श्री हंसराज जी ने वह भेंट 'दयानन्द ऐंग्लो वैदिक शिक्षा समिति' के कार्यालय को सौंप दिया।

दोनों भाईयों की महर्षि दयानन्द जी सरस्वती के प्रति इतनी अगाध श्रद्धा, अपार आस्था, निष्ठा तथा महर्षि के कार्यो के लिए अतीव हार्दिक कृतज्ञता पूर्ण भावना थी जिसके बल पर दोनों भाईयों के परिवारों ने असम्भव कार्य को सम्भव कर दिखाया। 'बड़े भाई को मिलने वाले वेतन से ही दोनों परिवारों का जीवन निर्वाह चलाना' यह एक इतिहास में एक ऐसा अद्वितीय उदाहरण उपस्थित हो गया। आज के युग में तो ऐसी कल्पना करना भी कठिन है।

हंसराज जी का हंसत्व

श्री हंसराज जी ने अपने नाम हंस शब्द के भाव के अनुसार शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् अपने आप को शिक्षित चरितार्थ किया। लाखों को शिक्षा प्रदान करके शिक्षित होने का सच्चा फल/परिणाम सफल करके जहाँ दिखाया और शिक्षा का 'जो 'आँखें खोल देना' के अनुसार उपयोगी उचित साधु शिक्षा को ही फैलाया। श्री हंसराज जी पाठ्यक्रम की पढ़ाई के साथ ही साथ धर्मशिक्षा विशेष रूप से पढ़ाते थे। अतः उन्होंने केवल अक्षर ज्ञान ही नहीं दिया, अपितु साक्षर–अक्षरों में निर्दिष्ट जीवन भी विद्यार्थियों का बनाने का प्रयास किया।

साहित्य में हंस की चर्चा–

संस्कृत–साहित्य में पक्षी राज हंस का वर्णन विशेष रूप से आता है। प्राथमिक दृष्टि से यह चर्चा देखिये–

माता शत्रुः पिता वैरी, येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभा मध्ये हंसमध्ये बको यथा।।

वह माता शत्रु के समान है और पिता वैरी के सदृश है जो अपनी सन्तान को पढ़ाते नहीं। अपठित मानव समाज में शोभा प्राप्त नहीं करते/सफल नहीं होते, जैसे कि हंसों के बीच में बगुला सफल नहीं होता।

शिक्षा से केवल अक्षर ज्ञान ही नहीं होता अपितु विद्या से पठित सर्वविध विकास करने
में समर्थ होता है। इसके साथ मानव समाज में कब–किससे–कैसे बोला? वर्ता जाता है? और ऐसा करने वाला ही शोभा प्राप्त करता है।

संयोग देखिये–श्री हंसराज जी के जीवन में शिक्षित होने पर शिक्षा से शोभा प्राप्त करने का जब अवसर आया तभी उनको ऋषि के विचारों से परिपक्व हो कर कारोबार करने का समय आया अर्थात् उन्हीं दिनों 'दयानन्द ऐंग्लो वैदिक स्कूल, कॉलेज' बनाने की योजना उफान पर आई।

दूसरा संयोग–कि अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश का द्वितीय संस्करण 1884–85 में प्रकाशित हुआ। इसके द्वितीय समुल्लास की अन्तिम पंक्तियों में यह श्लोक छपा। वहाँ उसको ऐसे उपस्थित किया गया है–"यह किसी कवि का वचन है–वे माता और पिता अपने सन्तानों के पूर्ण वैरी हैं, जिन्होंने उनको विद्या की प्राप्ति न कराई, वे विद्वानों की सभा में वैसे तिरस्कृत और कुशोभित होते हैं जैसे हंसों के बीच में बगुला। यही माता, पिता का कर्त्तव्य कर्म, परमधर्म और कीर्ति का काम है जो अपनी सन्तानों को तन, मन और धन से विद्या, धर्म, सभ्यता और उत्तम शिक्षा युक्त करना।"

हंस की महत्ता–हितोपदेश, पंचतन्त्र जैसे कथा साहित्य में हंस की विशिष्टता=खूबी, गुण बताते हुए कहा है–

अनन्तपारं किल शब्दशास्त्रम्,
स्वल्पं तथा–आयुर्बहवश्च विघ्नाः
सारं ततो ग्राह्यमपास्य फल्गु
हंसैर्यथा क्षीरमम्बुमध्यात्।।

इस संसार/जीवन में विद्या का आर–पार नहीं है, विद्या का क्षेत्र बहुत विशाल है,उसकी तुलना में जीवन स्वल्प है, उस पर भी विघ्नों, बाधाओं, अड़चनों का कोई अन्त नहीं इसलिए निरर्थक को छोड़ कर सार्थक ही का ग्रहण करे। जैसे हंस जल को छोड़कर सार रूप दूध को ही लेता है।

वैदिक वाङ्मय के मूलस्रोत और भारतीय साहित्य (रामायण, महाभारत, काव्य, नाटक आदि के अक्षय भण्डार वेद और उपनिषद् में भी **'हंसः शुचिषत्'** के रूप में आत्मा के पर्यायों में उसकी विशेषता बताने के लिए आया है। अर्थात् मनुष्य योनि में आया हुआ आत्मा हंस की तरह उत्कृष्ट=मोक्षधाम में जाने का अधिकारी होता है। आत्मज्ञान में संलग्न संन्यासी को हंस, परमहंस कहा जाता है।

महात्मा हंसराज जी का जीवन हर प्रकार से साक्षी है कि प्रिंसिपल के पद पर रहते हुए भी निर्लिप्त रूप से जीवन व्यतीत किया। प्रथम तो शिक्षा प्रदान के कार्य से पूर्ण हंसत्व रूप अपनाया। वेतन न लेकर जहाँ धन संचय का मोह त्यागा, वहाँ प्राचार्य के प्रति प्रतिदिन सैंकड़ों से मिलने वाले मान–सम्मान के मोह को भी पच्चीस वर्ष के पश्चात् त्याग दिया। जबकि प्रबन्ध समिति बार–बार अनुग्रह पूर्वक प्रार्थना करती रही कि आप प्राचार्य के पद की शोभा बढ़ायें।

भारतीय संस्कृति के अनुसार गृहस्थकाल पच्चीस वर्ष तक निभाने का विधान है।

महात्मा की गौरव गाथा–श्री भर्तृहरि ने नीतिशतक में महात्मा के स्वाभाविक गुणों को गिनाते हुए कहा है–

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा,
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनंश्रुतौ
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्।।

नीति–52

विपत्ति में धैर्य रखना, ऊँचे पद पर रहते हुए भी विनीत– अहंकारशून्य होना, सभा में अवसर के अनुरूप बोलना, विरोध रूपी युद्ध में विपक्षी को अपना बनाना, श्रेष्ठ– यशप्रद कर्म करना, वेद के प्रति लगाव, स्वाध्याय में जुटे रहना, वस्तुतः इन उत्कृष्ट गुणों को उत्कृष्टता से अपना कर इन गुणों को श्री हंसराज जी ने अपने जीवन के व्यवहार से साधारण सिद्ध कर दिया। तभी तो हम देखते हैं कि श्री हंसराज जी ने अपने पुत्र के क्रान्तिकारी वाले अभियोग में शान्त रहकर अपने धैर्य को परीक्षा दी। प्रिंसिपल के महत्त्वपूर्ण पद पर रहते हुए पूरी तरह से विनीत तथा अहंकारशून्य बने रहे। संसार में सभी सदा यश (मान–सम्मान) की आकांक्षा करते हैं। प्रबन्धक सभा के बार–बार कहने पर भी प्राचार्य का कार्यकाल बढ़ाने की स्वीकृति नहीं दी। दशप्रश्नी के उत्तर में अपना वेदों के प्रति लगाव प्रमाणित किया। जो उत्तर दिया उससे स्वयं को वेदों का अधिकारी विद्वान् सिद्ध किया। केवल कक्षाओं में ही अपनी वक्तृत्व कला का परिचय नहीं दिया, अपितु सभा के प्रधान बनकर जनता में अवसर–अवसर के अनुरूप अपने विचार देकर कला का गौरव बढ़ाया। सिद्धान्तों के विरोध के कारण उन दिनों यह विरोध कभी–कभी युद्ध का रूप ले लेता था तब भी आर्य नेता विपक्षियों को अपने विचार घण्टों सुना कर उनमें से अपना साथी तथा अनुयायी बनाने का यत्न करते थे। यह था **'युधि विक्रमः'** का इस क्षेत्र में प्रथम पराक्रम और पराक्रम का दूसरा रूप–श्री हंसराज जी दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कॉलेज के प्रिंसिपल बनकर मुख्यतया लाहौर में रह कर उत्तरदायित्व केवल वहाँ का सँभालते थे और इसके पश्चात् सभा का प्रधान बनकर सारे स्कूल कॉलेजों का उत्तरदायित्व सँभालते थे। क्योंकि आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा ही इन सारे डी.ए.वी. नामक शिक्षा संस्थाओं का कार्य भार निभाती थी अतः प्राचार्य से सभा प्रधान का कार्य विशेष पराक्रम वाला हो जाता है।

महात्मा की परिभाषा {=पहचान} में एक अन्य कवि कहता है– कि

'मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्'

मन–वचन–कर्म में एकरुपता रखना/होना। जनता को प्रभावित करने के लिए इन तीनों में भेद रखना। सभी पाठक मेरी तरह जानते हैं कि श्री हंसराज जी का जीवन एक रूपता की साक्षात प्रतिमूर्ति था।

महात्मा के जो पर्यायवाची नाम हैं उनमें से एक साधु भी है। साहित्य और लोक में इसकी मिलती–जुलती ही पहचान प्राप्त होती है। तभी एक कवि कहता है–

विद्या विवादाय, धनं मदाय,
शक्तिः परेषां परिपीडनाय।
खलस्य साधो विपरीतमेतत्,
ज्ञानाय दानाय चरक्षणाय।।

महात्मा हंसराज जी ने सदा सर्वत्र प्रिंसिपल और सभाप्रधान बनकर अपनी विद्या बिना भेदभाव के बाँटी थी। काँगड़ा भूकम्प आदि विपत्तिकालों मैं जिसने जो धन, अन्न, वस्त्र और औषधी आदि दिया वह सब पीड़ितों में बाँट कर उनकी रक्षा की। आपत्ति टलने पर आय–व्यय का सारा परिचय/हिसाब जनता में प्रचारित कर दिया।

182 शालीमार नगर,
होशियारपुर 146001

मकर संक्रान्ति पर्व 14 जनवरी, 2026 पर

मकर संक्रान्ति पर्व क्या है और इसे कब, क्यों व कैसे मनाते हैं ?

● मनमोहन कुमार आर्य

मनुष्य सभी आवश्यक विषयों का ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। जो ज्ञान उसे अधिक महत्वपूर्ण लगता है उसे स्मरण रखते हुए उससे लाभ प्राप्त करने में उसकी प्रवृत्ति बनती है। हमारे अनेक पर्व हमें उनके महत्व से परिचित कराते हैं जिन्हें मनाकर हम उससे यथोचित लाभ लेने का प्रयास करते हैं। मकर संक्रान्ति का पर्व भी ऐसा ही एक पर्व है जिसके यथार्थस्वरूप से परिचित होकर हमें ज्ञात होता है कि इस पर्व से "उत्तरायण" 6 माह के काल का आरम्भ होता है। इससे हमारे दिन के समय में वृद्धि और रात्रि के अन्धकार की अवधि में निरन्तर कमी आती जाती है। महाभारत के दिनों में उत्तरायण में ही हमारे क्षत्रिय व अन्य लोग अपने प्राण त्यागने को महत्वपूर्ण मानते थे। अजेय योद्धा भीष्म पितामह के जीवन का उदाहरण है कि जब उनका समस्त शरीर अर्जुन के बाणों से बिंध गया था और उनकी मृत्यु निकट ही थी, तब उन्होंने अपने ब्रह्मचर्य व तप के बल से अपने प्राणों व आत्मा की ऊर्ध्व गति के लिए उत्तरायण के आगमन तक रोक रखा था। इसका कारण यही था कि उत्तरायण में प्राण त्यागने पर मनुष्य की उत्तम गति व मोक्ष प्राप्ति की सम्भावना होती है। उत्तरायण के प्रथम दिन मकर संक्रान्ति के दिन ही यह पर्व अज्ञात दीर्घ अवधि से मनाया जा रहा है। इससे हमें आकाश में होने वाली ज्योतिषीय घटना का ज्ञान भी होता है। यदि यह पर्व न मनाया जाता होता तो जन सामान्य मकर संक्रान्ति की घटना से शायद परिचित न होता। अतः मकर संक्रान्ति मनाते हुए हमें मकर राशि और सूर्य के उसमें प्रविष्ट होने सहित इस पर्व से दिन के समय में वृद्धि व रात्रि के समय में कमी होने की वास्तविकता को समझना चाहिये। इसका हमारे जीवन में महत्व होता है। यदि मकर संक्रान्ति के दिन व इसके बाद भी रात्रि के समय में वृद्धि व दिन के समय में कमी का क्रम पूर्ववत् जारी रहता तो इससे मनुष्य जीवन के अस्तित्व में बाधायें व समस्यायें आती। अतः इस लाभकारी परिवर्तन के दिन को हमें प्रसन्नतापूर्वक ज्ञान से पूर्ण परम्परा को अपनी भावनाओं में स्थिर कर मनाना चाहिये। इस लेख में हम मकर संक्रान्ति विषयक जानकारी प्रस्तुत कर रहे हैं।

हमारी पृथिवी सूर्य के चारों ओर भ्रमण करते हुए परिक्रमा करती है। इसी से रात्रि, दिन, सप्ताह, महीने व वर्ष होते हैं। पृथिवी को सूर्य की एक परिक्रमा व चक्र पूरा करने में एक वर्ष का समय लगता है। इसे सौर वर्ष कहा जाता है। हमारी पृथिवी सूर्य की परिक्रमा एक वर्तुलाकार परिधि में करती है। इससे जो वृत्त बनता है उसे 'क्रान्तिवृत्त' कहते हैं। हमारे ज्योतिष के विद्वानों ने इस क्रान्तिवृत्त पर 12 भाग कल्पित किये हुए हैं। इन 12 भागों के नाम उन्होंने आकाशीय नक्षत्र पुंजों की कुछ पशुओं से मिलती जुलती आकृतियों के अनुरूप, जिन्हें राशियाँ कहते हैं, दिये हैं। ये आकृतियाँ हैं 1. मेष, 2. वृष, 3. मिथुन, 4. कर्क, 5. सिंह, 6. कन्या, 7. तुला, 8. वृश्चिक, 9. धनु, 10. मकर, 11. कुम्भ तथा 12 मीन। इन आकृतियों के समान नक्षत्र पुंजों की आकृतियाँ होने के कारण ही इन राशियों को ये नाम दिये गये हैं। सूर्य का भ्रमण व परिक्रमा करते हुए जब पृथिवी एक से दूसरी राशि में प्रविष्ट होती है तो उसे 'संक्रान्ति' नाम से सम्बोधित किया जाता है। संसार में पृथिवी के एक से दूसरी राशि में संचरण व प्रविष्ट होने को सूर्य का संक्रमण कहने लगे हैं। 6 माह तक सूर्य क्रान्तिवृत्त के उत्तर में उदय होता है और 6 माह तक क्रान्तिवृत्त के दक्षिण भाग में। इस प्रत्येक 6 मास की अवधि का नाम अयन कहलाता है। सूर्य के उत्तर की ओर उदय की अवधि को 'उत्तरायण' और दक्षिण दिशा की ओर उदय की अवधि को 'दक्षिणायन' कहते हैं। उत्तरायण काल में सूर्य उत्तर की ओर से निकलता हुआ दीखता है। उत्तरायण की अवधि में दिन का समय निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होता जाता है और रात्रि का समय दिन प्रति दिन कम होता जाता है।

दक्षिणायन काल में सूर्य दक्षिण की ओर से उदय होता हुआ दिखाई देता है। इसमें रात्रि का समय बढ़ता और दिन का समय घटता जाता है। दक्षिणायन काल में सूर्य जब मकर राशि में प्रवेश करता है तो इसे उत्तरायन और जब कर्क राशि में संक्रान्ति करता है तो उसे दक्षिणायन के नाम से जाना जाता है। उत्तरायण में सूर्य का प्रकाश हमारी पृथिवी पर अधिक मात्रा में प्राप्त होने से इससे अनेक प्रकार से लाभ होते हैं जिससे इसका महत्व दक्षिणायन से अधिक है। उत्तरायण का आरम्भ मकर संक्रान्ति के दिन से होने से इस दिन को महत्वपूर्ण मानकर पर्व मानने की परम्परा प्राचीन काल से चल रही है। मकर संक्रान्ति के दिन से ही इसके बाद के दिन बड़े होने आरम्भ होते थे परन्तु आजकल इस दिन से लगभग 22 दिन पहले ही दिन बड़े होने लगते हैं। अब से 88 वर्ष पूर्व विक्रमी सम्वत् 1994 में पाया गया था कि मकर संक्रान्ति से 22 दिन पूर्व धनु राशि के 7 अंश 24 कला पर 'उत्तरायण' होता है। इस परिवर्तन को 1350 वर्ष लगे हैं। ऐसा होने पर भी मकर संक्रान्ति के दिन ही उत्तरायण को आरम्भ मान लिया जाता है। इसका कारण प्राचीन काल से मनायी जाने वाली इस उत्तरायण पर्व प्रथा को सुरक्षित रखना प्रतीत होता है। इससे हमें यह ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में हमारे पूर्वज मकर संक्रान्ति के दिन उत्तरायण का पर्व मनाते थे और उत्तरायण उसी दिन होता भी था। यह कारण व महत्व इस उत्तरायण पर्व अथवा मकर संक्रान्ति पर्व को मनाने का है।

> **हमारी पृथिवी सूर्य के चारों ओर भ्रमण करते हुए परिक्रमा करती है। इसी से रात्रि, दिन, सप्ताह, महीने व वर्ष होते हैं। पृथिवी को सूर्य की एक परिक्रमा व चक्र पूरा करने में एक वर्ष का समय लगता है। इसे सौर वर्ष कहा जाता है। हमारी पृथिवी सूर्य की परिक्रमा एक वर्तुलाकार परिधि में करती है। इससे जो वृत्त बनता है उसे 'क्रान्तिवृत्त' कहते हैं। हमारे ज्योतिष के विद्वानों ने इस क्रान्तिवृत्त पर 12 भाग कल्पित किये हुए हैं।**

मकर संक्रान्ति का पर्व मध्य जनवरी मास में मनाया जाता है। आगामी वर्ष 2026 में यह पर्व बुधवार दिनांक 14 जनवरी, 2026 को मनाया जायेगा। इस अवसर पर शीत अपने यौवन पर होता है। इस समय जंगल, वन, पर्वत सहित नगरों व ग्रामों आदि सभी स्थानों में शीत का आतंक छाया हुआ होता है। ऐसे समय में मनुष्य के हाथ पैर भी सिकुड़ जाते हैं। मकर संक्रान्ति से पूर्व दिनों की यह स्थिति होती है कि सूर्य के उदय होते ही वह अस्तांचल के गमन की तैयारियाँ आरम्भ कर देते हैं। ऐसा लगता था कि दिन रात्रि में समा रहा है। रात्रि इतनी लम्बी हो जाती है कि कठिनाई से बीतती थी। मकर संक्रान्ति के आने पर रात्रि के वृद्धि अभियान पर विराम लगता है और इसके बाद से वह छोटी होती जाती है व दिन बड़े होने लगते हैं। दिन के समय में वृद्धि होने से मकर संक्रान्ति के दिवस से आरम्भ उत्तरायण काल को देवयान कहा गया है। इसी काल में महाभारत काल व उसके बाद के ज्ञानी लोग स्व. शरीर त्याग की इच्छा करते थे। वह ऐसा मानते थे कि इस समय देह त्यागने से उनकी आत्मा सूर्य लोक में होकर प्रकाश मार्ग से प्रयाण करेगी। आजीवन ब्रह्मचारी रहे भीष्म पितामह ने इसी उत्तरायण के आगमन तक शर–शैया पर शयन करते हुए प्राणोत्क्रमण की प्रतीक्षा की थी। ऐसे प्रशस्त समय पर कोई पर्व मनाने से कैसे वंचित रह सकता था। इसी कारण से आर्य जाति के प्राचीन आचार्यों ने मकर संक्रान्ति, सूर्य की उत्तरायण संक्रमण की तिथि को उत्तरायण या मकर संक्रान्ति पर्व निर्धारित किया था।

इस पर्व को मनाते हुए तिल के अनेक प्रकार के पकवान बनाकर उनका सेवन किया जाता है। वैद्यों के अनुसार शीत का निवारण करने में खाद्य पदार्थों में तिल का विशेष स्थान है। मकर संक्रान्ति के दिन भारत के सब प्रान्तों में तिल और गुड़ या खांड के लड्डू बनाकर दान किये जाते हैं। इन लड्डुओं को इष्ट मित्रों में भी बाँटा जाता है। महाराष्ट्र में इस दिन तिलों का 'तीलगूल' नामक हलुवा बाँटने की प्रथा है। सौभाग्यवती स्त्रियाँ तथा कन्याएँ अपनी सखी–सहेलियों से मिलकर उन को हल्दी, रोली, तिल और गुड़ भेंट करती हैं। प्राचीन ग्रीक लोग भी वधूवर को सन्तान वृद्धि के निमित्त तिलों का पकवान बाँटते थे। इससे ज्ञात होता है कि तिलों का प्रयोग प्राचीनकाल में विशेष गुणकारक माना जाता रहा है। प्राचीन रोमन लोगों में मकर संक्रान्ति

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

☞ पृष्ठ 06 का शेष

समस्त नैतिकताओं ...

आवसथ है। मन भी इसी बिन्दु से कार्य करता है। जाग्रत अवस्था में इसी स्थान को चाक्षुष कहा गया है। (चाक्षुष का अभिप्राय दाहिनी आँख का गोलक नहीं, यह वह बिन्दु है, जहाँ समस्त प्रत्यक्षों का एकीकरण होता है)। स्वप्नावस्था में इन्द्रियों से सम्बन्ध टूट जाता है और इसलिए आत्मा को केवल मन का समीपस्थ माना जाता है। सुषुप्ति में मन की वृत्तियों से भी सम्बन्ध टूट जाता है। अब आत्मा हृदय में रहता है। यह हृदय रुधिर प्रवाह का कपाटद्वार नहीं है। यह भी मस्तिष्क में लगभग वहीं है, जहाँ प्रत्यक्ष का केन्द्रबिन्दु था, मन भी था, केवल उन संयोजी पाशों से सुषुप्ति में सम्बन्ध टूट जाता है, जिनके फिर से संयोजन होने पर मन और इन्द्रियाँ फिर आत्मा की प्रेरणा से काम करने लगेंगी।

सुषुप्ति, समाधि और मुक्ति अवस्था में आत्मा को ब्रह्म या परमात्म–तत्व का साहचर्य प्राप्त होता है। कपिलमुनि के शब्दों में इसी का नाम ब्रह्मरूपता है। इन तीनों अवस्थाओं के शरीर–सम्बन्ध से (बहिरंग वृत्तियों से) छुटकारा मिलता है।

प्रभु का प्यार ही मनुष्य को आवागमन के बन्धनों से मुक्त कर सकता है। प्रभु–प्रसाद से ही ज्ञान और आनन्द की प्राप्ति होती है। जीवन की स्वच्छता ही प्रभु प्रसाद की पात्रता प्राप्त कराती है। इस स्वच्छता के लिए यम और नियमों का पालन करना अनिवार्य है अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच यम प्रभु–प्रसाद के लिए अनिवार्य और महाव्रत हैं। तप, स्वाध्याय, शौच, सन्तोष और ईश्वर–प्रणिधान इसी सन्दर्भ में नितान्त आवश्यक हैं। ये पाँच नियम कहलाते हैं।

जीवन के कलुष को धोने के लिए और प्रभु–प्रसाद की प्राप्ति के लिए प्रार्थना, स्तुति और उपासना आस्तिकता के आवश्यक अंग बन जाते हैं ये साधन हैं। स्वामी दयानन्द ने प्रार्थना, स्तुति और उपासना क्या है, इनकी इस प्रकार व्याख्या की है–

"स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण–कर्म–स्वभाव से अपने गुण–कर्म–स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना, उपासना से परब्रह्म में मेल और उसका साक्षात्कार होना।"

स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में स्वामी दयानन्द स्तुति, प्रार्थना और उपासना को और स्पष्ट करके इस प्रकार लिखते हैंः–

स्तुति–गुणकीर्तन, श्रवण और ज्ञान होना, इसका फल प्रीति आदि होते हैं।

प्रार्थना–अपने सामर्थ्य के अनन्तर ईश्वर–सम्बन्ध से जो 'विज्ञान' आदि प्राप्ति होते हैं उनके लिए ईश्वर की याचना करना और इसका फल निरभिमान आदि होता है।

उपासना–जैसे ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं वैसे अपने को करना, ईश्वर को सर्वव्यापक, अपने को व्याप्य जानकर ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है, ऐसा निश्चय योगाभ्यास से साक्षात् करना उपासना कहलाती है। इसका फल ज्ञान की उन्नति आदि है।

स्वामी दयानन्द इसी प्रसंग में **सगुण–निर्गुण स्तुति प्रार्थनोपासना** की व्याख्या इस प्रकार करते हैं

"जो–जो गुण परमेश्वर में हैं, उनसे युक्त और जो–जो नहीं हैं, उनसे पृथक् मानकर प्रशंसा करना **सगुण–निर्गुण स्तुति,** शुभ गुणों के ग्रहण की इच्छा और शेष छुड़ाने के लिए परमात्मा का सहाय चाहना सगुण–निर्गुण प्रार्थना और सब गुणों से सहित, सब दोषों से रहित परमेश्वर को मानकर, अपने आत्मा को उसके और उसकी आज्ञा के अर्पण कर देना सगुण–निर्गुणोपासना होती है।"

इस प्रकार स्तुति, प्रार्थना और उपासना तीनों द्वारा जीवन निर्मल और उदात्त बनता है और प्रभु के गुण–कर्म–स्वभाव के प्रति प्रीति बढ़ती है।

सांख्य–दर्शन में कपिलमुनि के ज्ञानमार्ग और योग–दर्शन में प्रतिपादित अष्टांगयोग के मार्ग से प्रभु के प्रति प्रीति बढ़ती और समाधि और मुक्ति के प्रति प्रेरणा मिलती हैं। मुक्ति और समाधि जन्म–जन्मान्तरों के तप, ज्ञान और साधना के परिणामों से सिद्ध होती है। मुक्ति का मार्ग ही दूसरे शब्दों में निःश्रेयस का मार्ग है। यह कोई साधारण, सरल, सहज और सस्ता मार्ग नहीं है – उपनिषद् के शब्दों में –

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया
दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति।

अर्थात् छुरे की धार पर चलना है। प्रभु की कृपा की बड़ी आवश्यकता है–

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया
न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष
आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्।

पाण्डित्य–मात्र से इस आत्मतत्व की प्राप्ति नहीं होती, प्रभु द्वारा जिसका वरण होता है, उसके प्रति प्रभु स्वयं अपने स्वरूप को अभिव्यक्त कर देते हैं। प्रभु का यह स्वरूप सत्–चित्–आनन्द–स्वरूप है, जो इन्द्रियों की पहुँच से परे है–

न तत्र चक्षुर्गच्छति, न वाग्गच्छति, नो मनो न विद्मो न विजानीमः।

भौतिक शरीर से रहित वह परमात्–सत्ता शरीरधारी पुरुष से सर्वथा भिन्न है–

अपाणिपादो जवनो गृहीता,
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
ओ३म् शम्

स्रोत–"प्रभु के मार्ग पर"
प्रस्तुतकर्ता–रामयतन

☞ पृष्ठ 05 का शेष

अज्ञात गोत्रोत्पन्न ...

'आयतनवान्' नामवाला है। ईश्वर को मन, प्राण और इन्द्रियों का संचालक माननेवाला तत्त्वज्ञ भी आयतनवान् कहलाता है।

वृषभ, अग्नि, हंस तथा जलचर पक्षी से ब्रह्म की विभिन्न कलाओं का ज्ञान प्राप्त कर सत्यकाम सोलह कला–परिपूर्ण ब्रह्म का ज्ञाता हो गया। ब्रह्मज्ञान से दीप्त मुखवाला वह ब्रह्मचारी अब अपने आचार्य गौतम के आश्रम में पहुँचा। उसे देखकर आचार्य ने जान लिया कि सत्यकाम ने ब्रह्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर लिया है और वह उसी प्रकार प्रकाशित हो रहा है जैसा किसी अध्यात्मतत्त्व–सम्पन्न पुरुष का चेहरा ओज एवं तेज से प्रकाशित होता है अतः आचार्य ने पूछा कि उसे यह उपदेश किससे मिला ? उत्तर में सत्यकाम ने कहा कि निश्चय ही मनुष्य से भिन्न अन्य योनियों के गुरुओं ने उस ब्रह्म के बारे में यह सब बताया है। अब आप जो कुछ शेष रहा, उसका उपदेश मेरे लिए करें। ब्रह्मविद्या के जिज्ञासुओं में यह अनुश्रुति रही है कि आचार्य से प्राप्त विद्या ही कल्याणकारी तथा फलवती होती है किन्तु आचार्य गौतम के लिए अब कुछ नई बात बताना तो सम्भव ही नहीं था अतः उसने कहा कि और कुछ बताना तो शेष रहा ही नहीं। जो कुछ तुम्हें बताया गया वही पूर्ण विद्या है। ब्रह्म की सत्ता को सर्वत्र देखना और समस्त भौतिक पदार्थों के अस्तित्व और आश्रय का कारण उसे ही मानना, यही तो पूर्ण ज्ञान है। इससे भिन्न अन्य कुछ भी ज्ञेय नहीं है।

–छान्दोग्योपनिषद् 4.4–9

'उपनिषदों की कथाओं' से साभार

☞ पृष्ठ 08 का शेष

मकर संक्रान्ति ...

के दिन अंजीर, खजूर ओर शहद अपने इष्ट मित्रों को भेंट देने की रीति थी। यह भी मकर संक्रान्ति पर्व की वैश्विकता एवं प्राचीनता का परिचायक है।

हमने मकर संक्रान्ति पर्व से जुड़ी घटना एवं इसके उपलब्ध स्वरूप पर प्रकाश डाला है। हमने इस लेख की सामग्री श्री पं. भवानी प्रसाद लिखित आर्य पर्व पद्धति पुस्तक से ली है। मकर संक्रान्ति वैदिक व आर्य पर्व है। इससे हमारी प्राचीन संस्कृति में पर्वों को प्राकृतिक, ज्योतिषीय व ऋतु परिवर्तन आदि घटनाओं से जोड़कर मानने की परम्परा का ज्ञान होता है। आज भी मकर संक्रान्ति का मनाना प्रासंगिक है। हमें ज्ञात होता है कि अब रात्रि छोटी व दिन बड़े होने आरम्भ हो जायेंगे। शीत का जो आतंक होता है वह भी मकर संक्रान्ति पर्व से निरन्तर घटता जाता है और फाल्गुन के महीने में क्षीण व समाप्त–सा हो जाता है। चैत्र का महीना तो अत्यन्त सुहावना होता है। इस महीने में होली का पर्व मनाया जाता है। हमें मकर संक्रान्ति पर्व पर अपने घरों में वृहद यज्ञ करने चाहिये और उसमें हवन सामग्री में तिल मिलाकर उससे आहुतियाँ देनी चाहियें। तिल के सभी प्रकार के पकवान बनाकर उसका कुछ दिनों तक सेवन करना चाहिये। वेद प्रचार–प्रसार से जुड़ी गुरुकुल आदि संस्थाओं को दान देना चाहिये। आर्यसमाजों व सार्वजनिक स्थानों पर पर्व मनाने के लिये सामूहिक कार्यक्रम भी आयोजित किये जा सकते हैं। ऐसा करके हम मकर संक्रान्ति पर्व की परम्परा को जारी रखने में सफल होंगे। यह प्रथा चलती रहे, लोग इसके विभिन्न पहलुओं से परिचित होते रहें तथा तिल आदि के पकवानों का सेवन कर शीतकाल में शीत से उत्पन्न रोगों से बचे रहें, यही इस पर्व को मनाने की उपयोगिता प्रतीत होती है। ओ३म् शम्।

196 चुक्खूवाला–2
देहरादून–248001
मो. 09412985121

पत्र/कविता

शिक्षकों के प्रति नव वर्ष की शुभकामनाएँ

तुम्हारी साधना में भारत का उदय है

यह नव वर्ष नहीं, नव चेतना का घोष है,
समय की देहरी पर खड़ा कोई मौन संकल्प
दृढ़ स्वर में पूछ रहा है क्या तुम तैयार हो ?

यह पंचांग का पन्ना नहीं,
यह आत्मा का शंखनाद है,
जो कहता है ठहरो नहीं,
जागो, सोचो, और स्वयं को गढ़ो।

हे शिक्षक!
तुम कक्षा में केवल पुस्तक नहीं खोलते,
तुम भविष्य का मानचित्र हाथों में थामते हो।
तुम शब्द नहीं देते, तुम दृष्टि देते हो,
तुम उत्तर नहीं, प्रश्नों की अग्नि जलाते हो।

सूचनाओं की इस अंधी आँधी में
जहाँ बुद्धि दिशाहीन है,
वहाँ तुम्हारा विवेक
ध्रुवतारा बन मार्ग दिखाता है।
तुम परीक्षा नहीं कराते,
तुम मनुष्य गढ़ते हो,
तुम्हारी पाठशाला में
जीवन स्वयं परीक्षा देता है।

बालिकाओं को पढ़ाना
कोई साधारण कर्म नहीं,
यह समाज की
सोई हुई आत्मा को
जगाने का यज्ञ है।
यह वह दीया है
जिससे घर नहीं,
युग प्रकाशित होते हैं।

आओ, ऐसी कक्षाएँ रचें
जहाँ प्रश्न अपराध न हों,
जहाँ संवाद डर से मुक्त हो,
जहाँ मूल्य शोर नहीं करें, पर मौन में गूँजें।

पुरानी जड़ताओं को ललकारो,
जमी हुई सोच पर
हथौड़ा चलाओ, क्योंकि जो शिक्षक
स्वयं सीखना छोड़ दे,
वह पीढ़ियों को चलना नहीं,
ठहरना सिखाता है।

तुम्हारा श्रम इतिहास में
शब्दों से नहीं,
परिणामों से लिखा जाएगा।
तुम्हारे हाथों में
भविष्य की तिथि नहीं,
भविष्य की चेतना है।

इस 2026 में शिक्षा केवल
रोज़गार का साधन न बने,
वह राष्ट्र–निर्माण की रणभूमि बने।
कलम तलवार बने, और विचार क्रांति।

हे शिक्षक!
तुम्हारे संकल्प में युग की धड़कन है,
तुम्हारे साहस में राष्ट्र की आशा,
और तुम्हारी साधना में भारत का उदय है।

1, जनवरी– 2026

कीर्ति शर्मा
मो. 9871277922

शान्ति घोष

शान्ति घोष का जन्म 22 नवम्बर, 1914 को कलकत्ता में हुआ था। उनके पिता देवेंन्द्रनाथ घोष थे, जो मूलतः बारीसाल जिले के निवासी थे और कोमिला कॉलेज में प्रोफेसर थे। उनके पिता के देश–प्रेम ने शांति को काफी प्रभावित किया।

जब शांति घोष फजुनिस्सा गर्ल्स स्कूल में पढ़ती थी, तब उसकी सहपाठी प्रफुल्ल नलिनी के संपर्क में आकर क्रांतिकारी संगठन ***'युगांतर'*** में शामिल हो गई। उसे क्रांतिकारियों की तरह प्रशिक्षण दिया गया। 14 दिसम्बर, 1931 को उन्हें सुनीति चौधरी के साथ एक बड़ी जिम्मेदारी दी गई। उस समय उनकी उम्र 15 साल और सुनीति की 14 साल थी, इन दोनों क्रांतिकारियों के कंधों पर एक ब्रिटिश नौकरशाह और कोमिल्ला जिले के मैजिस्ट्रेट चार्ल्स जेफ्री बकलैंड स्टीवंस को मौत के घाट उतरवाना था।

इस घटना के बाद उन दोनों को गिरफ्तार कर लिया गया। उन पर फरवरी, 1932 में कलकत्ता अदालत में मुकद्मा चला और आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई लेकिन वे इस सजा से निराश थी क्योंकि उसे फाँसी की सजा नहीं दी गई थी और इस तरह वह भी देश के लिए अपनी शहादत नहीं दे पाई।

1936 में उन्हें कई राजनैतिक कैदियों के साथ जेल से रिहा कर दिया गया। जेल से रिहाई के बाद उन्होंने पुनः अपनी पढ़ाई बंगाली महिला कालेज में शुरु की। वह भारतीय कम्युनिस्ट आंदोलन से जुड़ गई। बाद में राष्ट्रीय कांग्रेस में शामिल हो गयी। वर्ष 1942 में शांति घोष ने चंटगाँव के एक क्रांतिकारी और प्रोफेसर चितरंजन दास से शादी की। उन्होंने 1952–62 और 1967–68 तक पश्चिम बंगाल विधान परिषद् में योगदान दिया। 1962–64 तक पश्चिम बंगाल विधान सभा की सदस्य बनी। घोष ने ***'अरुण बहनी'*** नामक अपनी आत्मकथा लिखी और प्रकाशित की। महान महिला क्रांतिकारी शांति घोष का 28 मार्च, 1986 को निधन हो गया।

स्वामी गुरुकुलानन्द 'कच्चाहारी'
पिथौरागढ़ (उत्तराखण्ड)
'इतिहास के बिखरे पन्ने' से साभार

****

पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदाचन।
स्तोतारस्तऽइह स्मसि।।

यजु. 34.41

ओ जगत्–पोषक, तुम्हारे कार्य में हम जुटे हैं; काम पर–उपकार का करते हुए क्षति हो नहीं हमसे कभी, हम तुम्हारे गीत गाते सर्वदा।

☞ पृष्ठ 01 का शेष

पश्चिमी बंगाल में डी.ए.वी. संस्थाओं ...

द्वारा उत्साहपूर्वक संग्रह की गई सामग्री जैसे–मिठाई, कॉपी, पैन, पैंसिल, स्कूल बैग, गर्म वस्त्रों में टोपी, मफ्लर, जुराबें, जॉकेट, कम्बल, इत्यादि सॉरपी एवं इच्छापुर विवेकानंद भवन में 100 बच्चों को वितरित की गई। बंसल मोड में भी लगभग 100 आर्थिक रूप से कमज़ोर बच्चों में यह सामग्री वितरित की गई।

स्वामी श्रद्धानंद एवं पंडित रामप्रसाद बिस्मिल की जीवनी पर एक प्रश्नोत्तरी का आयोजन किया गया जिसमें अरविंद हाउस ने प्रथम स्थान, गांधी हाउस ने दूसरा तथा दयानंद हाउस ने तृतीय स्थान प्राप्त किया।

प्रक्षेत्र के समस्त विद्यालयों में विशेष यज्ञ का आयोजन किया गया और स्वामी श्रद्धानंद एवं पण्डित रामप्रसाद के जीवन पर आधारित प्रश्नोत्तरी का आयोजन किया गया। इन दोनों महापुरुषों के जीवन पर आधारित चलचित्र दिखाकर विद्यार्थियों का ज्ञानवर्द्धन किया गया।

स्वामी श्रद्धानंद एवं पण्डित रामप्रसाद का बलिदान दिवस झांझरा, पुरुलिया, खडगपुर, मेजिया, निमचा, रानीगंज, बालूघाट, शंकरपुर, दुबराजपुर, बैरकपुर, सांथालडिह, मिदनापुर, हल्दिया, पाण्डवेश्वर, के.एस.टी.पी. आसनसोल, कन्यापुर आसनसोल, रुपनारायणपुर, मधुकुण्डा, बाँकुडा, दाधका स्थित डी.ए.वी. विद्यालयों में हवन, भजन, प्रवचन और महापुरुषों से सम्बंधित अनेक कार्यक्रम करके यह महत्त्वपूर्ण दिवस मनाया गया।

शांतिपाठ के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ।

आर्य समाज, निजामुद्दीन ईस्ट में लगा स्वास्थ्य शिविर

आर्य समाज (निजामुद्दीन ईस्ट) नई दिल्ली के परिसर में स्वास्थ्य शिविर का आयोजन किया गया। श्रीमती इरा खन्ना,प्रबंधक के सौजन्य से निम्नलिखित निःशुल्क सेवाएँ मैक्स अस्पताल के माध्यम से प्रदान की गई– 1. दंत (डेंटल) जाँच व दंत चिकित्सक परामर्श 2. नेत्र जाँच व नेत्र रोग विशेषज्ञ परामर्श 3. हृदय रोग विशेषज्ञ (कार्डियोलॉजिस्ट) परामर्श 4. ईएनटी (नाक, कान, गला) परामर्श 5. ऑर्थोपेडिक (हड्डी रोग) परामर्श 6. पल्मोनोलॉजिस्ट (फेफड़ा विशेषज्ञ) परामर्श 7. रक्तचाप की जाँच 8. रैंडम ब्लड शुगर टेस्ट 9. ईसीजी (ECG) 10. बीएमडी (हड्डियों की घनता जाँच) 11. पीएफटी (फेफड़ों की कार्यक्षमता जाँच) की गई।

महाजन इमेजिंग लैब द्वारा 1. एसजीओटी–लिवर व स्वास्थ्य संकेतक 2. एसजीपीटी–लिवर व स्वास्थ्य संकेतक 3. ब्लड यूरिया 4. क्रिएटिनिन 5. कोलेस्ट्रॉल जैसी जाँचें निःशुल्क की गई।

निजामुद्दीन के 100 से अधिक निवासियों ने अपने कर्मचारियों सहित उपलब्ध निःशुल्क सेवाओं का लाभ उठाया। फ्लू और निमोनिया के टीके और ईसीजी भी 20 प्रतिशत कम फीस पर किए गए। आर्य समाज द्वारा चाय और बिस्किट का विशेष प्रबन्ध किया गया। आर्य समाज के इस सेवाकार्य बहुत प्रशंसा की गई है।

डी.ए.वी. बी.आर.एस. नगर लुधियाना में स्वामी श्रद्धानंद जी का बलिदान दिवस

'भावना मिट जायें मन से, पाप अत्याचार की।' के भावों को मन में रखकर, दिनांक 23 दिसंबर, 2025 को, डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, बी.आर.एस. नगर, लुधियाना के प्रांगण में, महान आर्य नेता, स्वतंत्रता सेनानी, 'स्वामी श्रद्धानंद जी के 99वें 'बलिदान–दिवस पर विशेष हवन आयोजित किया गया। स्वामी जी के जीवन–दर्शन व सामाजिक विचारों को 'पत्र–वाचन, कविता–पाठ और भाषण के माध्यम से प्रस्तुत किया।

अपने संबोधन में प्राचार्या ने कहा "श्रद्धानंद जी स्वामी दयानंद के सिद्धांतों पर आधारित शिक्षण–प्रणाली व समाज का निर्माण करने चाहते थे। जहाँ प्रत्येक मानव **'संगच्छध्वं संवदध्वम्'** की भावनाएँ से भरा हो

छात्रों ने 'प्रभु हम पे कृपा करना, प्रभु हम पे दया करना।' भजन से स्वामी जी को सुरों की श्रद्धांजलि अर्पित की। भजन–गायन ने वातावरण में आध्यात्मिकता, भावुकता और प्रेरणा का संचार किया। इस अवसर पर छात्रों ने और **'मनुर्भव'** के मार्ग पर चलते हुए संसार के उपकार में अग्रसर/तत्पर हो। हम सबका यह कर्त्तव्य बनता है कि हम उनके विचारों को अगली पीढ़ी को हस्तांरित करके उनके ऋण से उऋण होने का प्रयास करें।'

Registration No. R.N.I. 39\57
Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11\6066\2024-25-26
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103\2024-25-26
Posted at L.P.C.(Delhi RMS)D110006 ON Wednesday & Thursday, 2025

'नो नशा नेशन' अभियान ने करनाल में रचा जनजागरण का इतिहास

डी.ए.वी. पुलिस पब्लिक स्कूल पुलिस लाइन, करनाल द्वारा दादूपुर में आर्य युवा समाज के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री योगी सूरी के नेतृत्व में **'नो नशा नेशन'** अभियान आयोजित किया गया। इस अवसर पर 100 कुण्डीय वैदिक हवन और जन–जागरूकता रैली का आयोजन किया गया।

कार्यक्रम में विद्यार्थियों, अभिभावकों, शिक्षकों, समाजसेवियों एवं स्थानीय नागरिकों की अभूतपूर्व सहभागिता देखने को मिली। सुसज्जित हवन कुण्डों के चारों ओर बैठे विद्यार्थियों, शिक्षकों एवं अतिथियों ने सामूहिक मंत्रोच्चार के साथ आहुतियाँ अर्पित कीं। मुख्य हवन कुण्ड से पूरे अनुष्ठान का संचालन करते हुए मंत्रों एवं आहुतियों के महत्व को भी सरल शब्दों में समझाया गया।

इससे पूर्व दादूपुर एवं करनाल के समीपवर्ती क्षेत्रों में एक विशाल नशा विरोधी जागरूकता रैली निकाली गई। विद्यार्थियों ने ***"से नो टू ड्रग्स"*** और ***"स्वस्थ युवा सशक्त राष्ट्र"*** जैसे नारों के साथ हाथों में तख्तियाँ लेकर समाज को नशे के दुष्परिणामों के प्रति जागरूक किया।

विशेष आकर्षण विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत नुक्कड़ नाटक रहा, जिसमें नशे की लत से होने वाले सामाजिक, मानसिक एवं शारीरिक दुष्प्रभावों को अत्यंत मार्मिक एवं प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया।

इस गरिमामय अवसर पर अनेक विशिष्ट अतिथियों की उपस्थिति रही, सभी अतिथियों ने अपने प्रेरक संदेशों में युवाओं से नशे एवं मादक पदार्थों से दूर रहकर स्वस्थ जीवन–शैली अपनाने और राष्ट्र निर्माण में सहभागी बनने का आह्वान किया और चेताया कि नशा व्यक्ति के साथ–साथ परिवार और समाज की जड़ों को भी कमजोर कर देता है।

कार्यक्रम के अध्यक्ष, प्रधानाचार्य श्री अरुण वर्मा जी ने कार्यक्रम की सफलता के लिए दादूपुर के श्री अमित आर्य के सहयोग हेतु आभार व्यक्त किया।

कार्यक्रम का समापन नशा मुक्त करनाल एवं नशा मुक्त भारत के सामूहिक संकल्प के साथ हुआ। विद्यार्थियों, अभिभावकों ने एक स्वर में नशे के विरुद्ध जागरूकता फैलाने और भावी पीढ़ियों को सुरक्षित भविष्य देने की शपथ ली।

हंसराज विद्यालय सै.–6 पंचकूला में स्वामी श्रद्धानंद बलिदान दिवस

हंसराज पब्लिक स्कूल, सेक्टर–6, पंचकूला ने महात्मा स्वामी श्रद्धानंद जी के बलिदान दिवस का श्रद्धा, वैदिक परंपरा एवं सेवा–भाव के साथ आयोजन किया। इस अवसर पर विद्यालय परिसर में हवन यज्ञ का आयोजन किया गया।

प्रातःकालीन सभा के दौरान भजन, विचारोत्तेजक भाषण एवं प्रेरक उद्‌बोधन प्रस्तुत किए गए। इन गतिविधियों के माध्यम से विद्यार्थियों को स्वामी श्रद्धानंद जी के जीवन और कार्यों से परिचित कराया गया। कार्यक्रम का उद्देश्य छात्रों में त्याग, कर्तव्यनिष्ठा एवं सामाजिक चेतना को सुदृढ़ करना रहा।

प्रधानाचार्या श्रीमती जया भारद्वाज ने अपने संबोधन में कहा कि स्वामी श्रद्धानंद जी का जीवन समाज के वंचित वर्ग के उत्थान हेतु समर्पित रहा है।

प्रधानाचार्या के मार्गदर्शन में तथा युवा समाज के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री योगी सूरी जी की प्रेरणाओं से अनुप्राणित होकर, विद्यालय में ऊनी वस्त्र दान अभियान संचालित किया गया। विद्यालय के पीस क्लब के सदस्यों द्वारा स्वेटर, जैकेट, टोपी, दस्ताने एवं मोज़े एकत्र कर पुराने पंचकूला क्षेत्र के ज़रूरतमंद लोगों में वितरित किए गए। वस्त्र प्राप्त कर लाभार्थियों ने विद्यालय परिवार के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त की।

डी.ए.वी. अबोहर ने अंतर्राष्ट्रीय हिंदी ओलंपियाड में तीन स्वर्ण और एक रजत पदक जीतकर रचा इतिहास

एलआरएस डीएवी सीनियर सेकेंडरी मॉडल स्कूल, अबोहर के विद्यार्थियों ने हिंदी ओलिंपियाड फाउंडेशन द्वारा आयोजित अंतर्राष्ट्रीय हिंदी ओलंपियाड में उत्कृष्ट प्रदर्शन करते हुए विद्यालय, नगर एवं प्रदेश का नाम गौरवान्वित किया है। इस प्रतिष्ठित प्रतियोगिता में विद्यालय के विद्यार्थियों ने तीन स्वर्ण पदक एवं एक रजत पदक प्राप्त कर ऐतिहासिक उपलब्धि अपने नाम की।

हिंदी विभागाध्यक्षा श्रीमती अलका सतीजा ने जानकारी देते हुए बताया कि कक्षा आठवीं की श्रीजा, कक्षा नौवीं की अशनूर तथा कक्षा दसवीं के नाहिद ने स्वर्ण, कक्षा दसवीं के पर्व चलाना ने रजत पदक जीतकर विद्यालय की गरिमा को बढ़ाया।

प्राचार्या श्रीमती स्मिता शर्मा ने इस शानदार सफलता पर विजेता विद्यार्थियों, उनके अभिभावकों तथा हिंदी विभागाध्यक्षा श्रीमती अलका सतीजा और हिंदी विभाग की पूरी टीम को हार्दिक बधाई दी। मैडम ने विद्यार्थियों को उज्जवल भविष्य के लिए आशीर्वाद दिया। उन्होंने कहा कि यह उपलब्धि विद्यार्थियों की मेहनत, लगन और विद्यालय की गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का सशक्त प्रमाण है। विद्यालय सदैव विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के लिए निरंतर प्रयासरत रहता है।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **फर्स्ट इम्प्रैशन कार्पोरेट सर्विसिज, (प्रा.) लि.,** ई.113–114, सैक्टर–63, नोएडा, उ.प्र.–201301 (दूरभाष : 120–4246315) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**